अपूर्व

सिद्धान्त रत्नाकर

(द्वितीय भाग)

लेखक :—

श्री १०८ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी

सहकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी

प्रकाशक :—

सत्सङ्गी बरेली

पुस्तक मिलने के पते : –

(१) बा० गुलज़ारीलाल एडवोकेट, मानिक चौक, अलीगढ़।

(२) ला० चुन्नीलाल गुप्ता लोहेवाले, बुलन्दशहर।

(३) बा० श्यामबहादुर सिनहा १८२ चमनपुरी, बरेली।

चतुर्थबार } ४,००० | बसंत पंचमी संवत् २०१० वि० (सन् १९५४ ई०) | { मूल्य नित्य अभ्यास

नोट—डाक खर्च आने पर ही पुस्तक भेजी जा सकती हैं, अन्यथा नहीं।

अपूर्व

सिद्धान्त रत्नाकर

द्वितीय भाग की

अनुक्रमणिका रत्न रूप

(अवान्तर विभास सूची क्रम)

मुद्रक—हरप्रसाद शर्मा, प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़ ।

प्रस्तावना

सर्वाधिष्ठान जगदीश्वर को अनेकशः अभिवादन है कि जिस के लेशानन्द से जगत् के सर्व जीव अभीष्टार्थ की प्राप्ति द्वारा आनन्दित होते हैं।

मुमुक्षुओं के लिये मुख्य कर्त्तव्य यह है कि वेद, वेदान्त व सर्वज्ञों और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के वाक्यों पर दृढ़ विश्वास रक्खें; हेतु यह है कि उनकी आज्ञाके अनुसार धारणा करने पर सम्पूर्ण संशय, विपर्य्य निवृत्त होकर ब्रह्मज्ञान दृढ़ होता है।

दृष्टि रेव सृष्टि १ दृष्टि समय सृष्टि २ सृष्टि पश्चात् दृष्टि इन तीनों दृष्टियों (सत्ताओं) को वेद, वेदान्त में विशेषतया वर्णन किया है। यथार्थ समझ करके इन सत्ताओं के विभाग द्वारा निगम, आगम के सर्व वाक्योंकी यथोचित व्यवस्था होकर संशयादि मूल सहित नष्ट होते हैं, उन सत्ताओं का स्पष्ट भाव यह है कि एक सत्तामय दृष्टि (संवित्त) ही अज्ञानियों को सृष्टि हो भासती है १ दो सत्ता रूप दृष्टि (वृत्ति) काल में ही सृष्टि होती है२ तीन सत्ता मध्य सृष्टि पहिले और उसकी दृष्टि (प्रतीत) पीछेहोतीहै ३॥

सात्विक आदि तीनों गुणों के हेर फेर से अथवा अधिकारी का भेद मान कर यथायोग्य किये वर्ताव सफल होते हैं, तैसे तीनों सत्ताओं के भेद (विभाग) करने पर संशयादि निवृत होते हैं। अन्यथा निर्दोषता नहीं होती।

यदि साधन ठीक न हों तो ज्ञान नहीं होता और बन जाने से ज्ञान के पश्चात् साधनों का कर्त्तव्य नहीं रहता अर्थात् जिन अकृतोपासक मनुष्यों के साधन परिपक्व नहीं होते उन कोमल निश्चय वालों को जीवन्मुक्ति की सिद्धतार्थ साधनों का कर्त्तव्य मानना पड़ता है और उन को करने उचित हैं।

ब्रह्म ज्ञान की दृढ़ता होने पर अज्ञान के अभाव हुये पुनः साधनों की कर्त्तव्यता नहीं रहती। अर्थात् अष्टावक्र गीता आदि उच्च २ श्रेणी की संहिताओं में कर्त्तव्यता को ही बन्ध वर्णन किया है। जो विद्वान् अन्तर्मुख रहते हैं वह उत्तम हैं और जिन ज्ञानियों की विशेष प्रवृत्ति (बाह्य मुखता) होती है, शास्त्रों में उनकी मन्द प्रारब्ध मानी है, वह प्रशंसनीय नहीं। त्यागी विद्वान् निरंतर समाधिनिष्ठ रहे अथवा राज्य में स्थित हो ब्रह्म वेत्ता नित्य यज्ञ, युद्धादि को करता रहे स्वरूप दृष्टि से वह दोनों तुल्य हैं, भेद व्यवहार में है, परमार्थ से नहीं।

वेद, वेदान्त में जहाँ २ विद्वानों में उत्तम २ भावों और साधनों की विद्यमानता वर्णन की है वह भी साधकों के लिये है ब्रह्म रूप विद्वान् वेद, शास्त्रों के विधि, निषेध से अतीत (मुक्त) है।

साधन करने के समय देहादि पदार्थों में आशक्ति व ज्ञान निष्ठा हुये पीछे साधनों का कर्त्तव्य मानना और वर्त्ताव के वाक्यों को सिद्धान्त में व निष्ठा के शब्दों को व्यवहार में लगाना, तथा अपने जाने व कहने के अनुसार धारणा न करना इत्यादि विपरीतता अति हानिकारक व शोचनीय है।

अज्ञानियों के बोधार्थ सर्व वेद, शास्त्र प्रवृत्त होते हैं अर्थात् ज्ञान हुये पुनः कुछ कर्त्तव्यता नहीं रहती किंतु विद्वान् पतित प्रवाह (प्रारब्धानुसार) व्यवहार करते हैं।

गर्व स्वार्थ (अहंता, ममता) ही संसार (बन्ध) है इन दुर्वासनाओं को निवृत्त करना चाहिये और ईश्वर सृष्टि सुख, दुःख व बन्ध, मोक्ष का हेतु नहीं और जीव से वह निवृत्ति भी हो नहीं सकती किन्तु जीव सृष्टि (अहंता, ममता) आदि दुर्वासनाएं अधिकारियों को त्यागनी योग्य हैं।

जिन २ अर्थों में मुमुक्षुओं को विशेषतया संशय आदि होते हैं उन सर्व प्रसंगों तथा राम गीता १ अवधूत गीता २ जीवन्मुक्त गीता ३ अष्टावक्र गीता ४ और भी वेदान्त की अनेक संहिताओं के सिन्द्धान्तों को इस द्वितीय भाग में सरलता से वर्णन किया है। सर्व अर्थों की सिद्धि के लिये दोनों भागों में सहस्र से अधिक प्रमाण और अनेक युक्तियों को प्रकाशित किया है वह सर्व जिज्ञासुओं को उपयोगी व धारणीय हैं।

प्रथम भाग को यथार्थ विचार करके पश्चात् द्वितीय भाग का विचार करने पर सिद्धान्तार्थ अधिक प्रकाशित होवेंगे।

प्रमाणों के पास अवकाश नहीं रहने पर मूल (संहिताओं) के नाम लिख नहीं सके, जिनको आवश्यकता हो वह पहिले छपे हुये इसके मूल गुटके से देख सकते हैं।

दृष्टि आदि दोषों से रही त्रुटियां के लिये पुस्तक निर्माता क्षमा प्रार्थी है बल्कि विद्वान् कृपया उनको सुधार कर आभिज्ञ करें जिससे द्वितीय वार छपने में त्रुटियाँ न रहें।



श्री १०८ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज, श्री स्वामी आत्मानन्द जी

अपूर्व

सिद्धान्त रत्नाकर

द्वितीय भाग

ज्ञाननिष्ठा रूप पञ्चम रत्न (५)

सप्त भूमिका विभास (२१)

अवबोधं विदुर्ज्ञानं तदिदं सप्त भूमिकम्। मुक्तिस्तु ज्ञेयमित्युक्तं भूमिका सप्तकात्परम्॥१
शास्त्र सज्जन संपर्कैः प्रज्ञामादौ विवर्धयेत्। प्रथम भूमिकैपोक्ता योगस्यैव च योगिनः॥२
ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समदाहृता। विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनु मानसा॥३
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्ति नामका। पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥४

अनुभव साधन भूमिका,इनसे हो दृढ़ ज्ञान। सप्त भूमिका ज्ञान लखु,ज्ञेय मुक्त पर जानि॥
शास्त्र साधु के संगकर,बुद्धि बढ़ावे नीत। ज्ञान प्रथम यह भूमिका, योगी जनकी मीत॥
लखो शुभेच्छा प्रथम की, सत विचारना दूज। तीजी है तनुमानसा, ब्रह्म तत्त्व को पूज॥
जान सत्वाप्ति चतुर्थी, असंसक्ति सो पांच। षष्ठी वस्तु अभावनी, सप्त तुर्यगा रांच॥

प्रश्न--सातों भूमिकाओं का क्रम ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता के लिए कहिये।

उत्तर--चित्त की निष्ठायें (स्थित) रूप सातों भूमिकायें ब्रह्मबोध की परिपक्वता का साधन हैं, अर्थात् इनके अभ्यास द्वारा ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता होती है, इसलिये इनको ज्ञान की भूमिका कहते हैं, मुक्ति इन सातों भूमिकाओं से परे (अतीत) है॥१॥

मोक्ष शास्त्रों और निष्काम महात्माओं का यथाविधि सत्संग करने से, वैराग्य आदि साधनों के पुष्ट होने पर, ज्ञानकी प्रथम भूमिका प्राप्त होती है॥२

सर्व अनात्म पदार्थों में से उत्तम (शुभ) मोक्ष है, उसकी तीव्र इच्छा पहिली शुभेच्छा है, ब्रह्मात्मा की एकता का विचार करना श्रेष्ठ है इसको द्वितीय सुविचारना कहते हैं, अभ्यास द्वारा मन की सूक्ष्मता होना तृतीय तनु मानसा है,हृदय की अन्तर्मुखता रूप सात्विक भाव की प्राप्ति चतुर्थ सत्वाप्ति है शरीर आदि सर्व पदार्थों में आसक्ति का त्याग पंचम असंसक्ति है॥३

अद्वैतात्म के दृढ़ अभ्यास द्वारा सर्व पदार्थों की अभावना होनी षष्टि पदार्थाभावनी है, तुर्य (आत्मज्ञान) की दृढ़ता रूप सप्तम भूमिका तुर्यगा होती है, सातों भूमिकाओं का अर्थ इनके नामों से स्पष्ट है इसके यथार्थ तत्त्व को उत्तम विद्वान् जानते हैं॥४॥

भूमिका त्रितयं जाग्रच्चतुर्थी स्वप्न उच्यते। विच्छिन्न शरद भ्रांश विलयं प्रविलीयते॥५
शांताशेष विशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैत मात्रके। गलित द्वैत निर्भास मुदितोतं प्रबुद्धवान्॥६
त्रिभिरेतैश्चिराभ्यस्तैर्हृदय ग्रन्थयो दृढ़ाः। निःशेषमेव त्रुट्यन्ति विसच्छेदाद्गुणा इव॥७
इत्यंतर्लीन चित्तः कतिचित्संवत्सरानभ्यस्य सर्वथैव कुर्वन्नपि।
बाह्य पदार्थान् भावनां त्यजतितुर्यात्मा भवति ततो जीवन्मुक्त इत्युच्यते॥८

जाग भूमिका तीन यह, चतुर्थ स्वप्न समान। शरद काल हो मेघ क्षय, सोई पंचम जान॥
षटी भूमि गत द्वैत बध, सब संशय हों नाश। अद्वै योगी शांत पद, ब्रह्मरूप सुख राश॥
मनोनाश क्षय वासना, अभ्यासहि हों तीन। चिज्जड़ ग्रन्थी नशें अति, दंड तांत हत चीन॥
लखु अंतर मुख वृत्ति जिस, कई वर्ष अभ्यास। बाह्य दृष्टि से करे सब, तुर्य मुक्त गति वास॥

प्रश्न—इन सातों का स्वरूप और स्पष्टता पूर्वक वर्णन कीजिये।

उत्तर—पहिली तीन भूमिकाओं में जाग्रत के समान जगत् की सत्यता भासती है, इसलिये यह तीन भूमिकाएं जाग्रत रूप कहलाती हैं, और प्रपंच को कल्पित जान लेने पर चतुर्थ भूमिका स्वप्न रूप मानी जाती है, तथा स्वरूप आनन्द की स्फुर्त्ती होने से पंचम सुषुप्ति रूप कहाती है, यह शरद काल में नष्ट हुये बादलों के सदृश शुद्ध है॥५॥

द्वैत के अभाव होने पर, सर्व भेद से रहित, केवल अद्वैत ब्रह्म में धारणा रूप षष्टि भूमिका है, उसमें तीव्र अभ्यास करने पर तुर्या (आत्मा का निश्चय) रूप सप्तम तुर्यगा भूमिका प्राप्त होती है इसी को जीवन्मुक्त पद कहते हैं॥६॥

मनोनाश, वासना क्षय, तत्त्वज्ञान इन तीनों का समकाल (इकट्ठा) अभ्यास करने पर चिज्जड़ ग्रन्थी (अविद्या) ऐसे नष्ट होती है जैसे दण्डे के मारने कर कमल तन्तु शीघ्र टूट जाती है, अर्थात् देह व अन्तःकरण आदि सर्व पदार्थों और उनके धर्मों में आसक्ति के अभाव हुए अन्तर्मुखता प्राप्ति होती है, ब्रह्मज्ञान के अति कठिन साध्य होने से चतुर्थ भूमिका के पीछे अदृढ़ ज्ञान वालों को मनोनाश आदि का बारम्बार अभ्यास करने पर ब्रह्म-ज्ञान की दृढ़ता होती है, इस अर्थ को आगे श्लोक में स्पष्ट करते हैं॥७॥

षष्टि भूमिका में तीव्र अभ्यास करके अनात्म पदार्थों की भेद (द्वैत) भावना के दूर हुए तुर्यरूप दृढ़ निष्ठा की प्राप्ति होती है, तभी विद्वान् जीवन्मुक्त कहलाता है। अर्थात् इन सातों भूमिकाओं के क्रम पूर्वक अभ्यास करने पर ब्रह्मात्मा की एकता रूप दृढ़ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे जीवन्मुक्त पद में स्थिति होती है और प्रारब्ध के समाप्त होने पर विद्वान् कैवल्य भाव (विदेह मुक्ति) पाता है॥८

अनिर्वाणोपि निर्वाणश्चित्रदीप इव स्थितः। अंतः शून्यो बहिःशून्यःशून्य कुंभ इवांबरे॥९
केवलं क्षीण मननमास्ते द्वैतैक्य निर्गतः। निर्ग्रन्थिःशांत संदेहो जीवन्मुक्तोविभावनः॥१०
तदा जाड्य विनिर्मुक्तमच्छवेदनमाततम्। आश्रितं भवति प्राज्ञो यस्माद्भूयो न लिप्यते॥११
नाप्रतीतिस्तयोर्बाधः किन्तुमिथ्यात्व निश्चयः। नो चेत्सुपुप्ति मूर्च्छादौ मुच्येतायत्नतो जनः१२

फुरण युक्त निर्वाण वह, बाह्यांतर हो एक। घट नभ भीतर बाहिरे,आनन्दहि इकमेक॥
ध्येय वासना दूर हों, चिज्जड़ ग्रन्थी शून। जीवन्मुक्त विपर्य्य हत, रहे नहीं कुछ ऊन॥
पाय ज्ञान जड़ता नशे, चेतनलखु चहुं ओर। लिप्त नहीं तिस कर्म सब,वारि पद्म नहिंखोर॥
मान ज्ञानसे दूर नहिं, निश्चय मिथ्या जान। होंइ सुपुप्ती मुक्त तब, सभी जीव बिन ज्ञान॥

प्रश्न–चैतन्यात्मा के ज्ञान दृढ़ होने से कैसी दशा होती है।

उत्तर–विद्वान् प्रारब्धानुसार चेष्टाओं को करता हुआ ज्ञान दृष्टि से मुक्त स्वरूप है, उसको जीवन्मुक्त कहना चाहिये। अर्थात् ब्रह्म चैतन्य के तीव्र अभ्यास द्वारा विद्वान् अनात्म अभिमान से रहित देह निर्वाहक क्रियाओं को करता हुआ सदा निर्वाण(अफुर पद) को प्राप्त होता है, जैसे घट के भीतर, बाहर आकाश निर्विकार है तैसे ही ब्रह्मज्ञानी सर्व चेष्टाओं को करता भी सर्वत्र निर्विकार आनन्द स्वरूप रहता है उसको जीवन्मुक्त कहते हैं॥९॥

द्वैत व अद्वैत दोनों के मनन से रहित, चिज्जड़ ग्रन्थी से मुक्त अर्थात् देह आदि के संग से अतीत,सर्व जगत् के बाध निश्चय द्वारा ब्रह्मवेत्ता कैवल्य पद में विश्राम पाता है। ऐसी अद्वैत निष्ठा की दृढ़ता जीवन्मुक्ति पद है॥१०

ब्रह्म चैतन्य के अभ्यास से जीवन्मुक्त विद्वान् जड़ता आदि से रहित महान् दत्त(ज्ञातज्ञेय)होता है और ब्रह्मात्म के अद्वैत निश्चय से ज्ञानी जल में कमल के समान सर्व दृश्य के सम्बन्ध से सदा निर्लेप रहता है॥११॥

जगत् की अप्रतीति रूप जड़ता जीवन्मुक्तों में कभी नहीं होती,किंतु संसार का मिथ्यत्व निश्चय होता है, जो कदाचित् प्रपंच व तिसके सर्व पदार्थों की अप्रतीति और अभाव विद्वानों में होता मानें तब सुपुप्ति आदि में बिना यत्न सब की मुक्ति होनी चाहिये। सर्व कथन से यह स्पष्ट होता है कि अद्वैत ज्ञान की दृढ़ता ही जीवन्मुक्ति पद है। यदि आग्रह से जीवन्मुक्तों में वादी जड़ता आदि माने तब वृक्ष पाषाण आदि की और शीघ्र मुक्ति होनी चाहिए परन्तु जो विद्वान् वेद, वेदान्त के यथार्थ तत्त्व को जानते हैं वह सर्व अर्थों की निर्दोष व्यवस्था करते हैं॥१२॥

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥१३

सत्वदशा सुख ज्ञान हो, निर्मल दृष्टि सुजान। तम जड़ता अज्ञान लखु, नर मोहे अनजान॥

प्रश्न—जीवन्मुक्तों में जड़ता होती है वा नहीं इस अर्थ में विशेष विवाद हुआ करते हैं, मेरे संशय दूर करने के लिये इसी अर्थ को युक्तियों पूर्वक पुनः वर्णन कीजिये।

उत्तर—जो यह कहते हैं कि ब्रह्म चैतन्य के दृढ़ अभ्यास करने पर पांचवी भूमिका के पश्चात् क्रम पूर्वक सप्तम भूमिका में पहुँच कर जीवन्मुक्ति निष्क्रिय (जड़) होते हैं। यह अर्थ युक्ति, प्रमाण से सिद्ध नहीं किन्तु आग्रह पूर्वक है।

अर्थात् वेद, वेदान्त में जीवन्मुक्तों को जड़वत् वर्णन किया है जड़ होना कहीं नहीं लिखा, यदि विचार से देखें तो तमोप्रधान जड़ता मूढ़ मनुष्यों में होती है और जीवन्मुक्तों में चैतन्य स्वरूप की स्फूर्ति (सात्विक भाव) रहता है इसलिये उन में जड़ता की कल्पना कैसे की जावे, सात्विक दशा के विशेष निर्मल होने से इस में स्थित हुये विद्वानों को ज्ञान व आनन्द की स्फूर्ति होती है, अतः जीवन्मुक्तों में जड़ताकी कल्पना करना युक्ति, प्रमाण से रहित केवल अज्ञान युक्त है। इस अर्थ को वेद, वेदान्त और भगवद्गीता में स्पष्ट वर्णन किया है अर्थात् तामस (जड़) दशा में अज्ञान व दुःख होता है। जीवन मुक्तों की यह दशा कभी नहीं हो सकती किन्तु जड़ अवस्था वृक्ष पाषाण में रहती है, उसमें अति व्याप्ति होवेगी, यानी वृक्ष आदि के समान जीवन्मुक्त होना चाहिये।

हठ योग में समाधिनिष्ठ पुरुष दूसरों को जड़ भासता है परन्तु वेदान्त मध्य अद्वैत ज्ञान को निर्विकल्प समाधि माना है, अतः वेदान्त की रीति से चैतन्य के अभ्यास से जड़ता माननी असंभव और वदतोव्याघातादि दोष सहित हुई अयुक्त है।

जैसे मन्तव्य, अभ्यास होता है वैसी दशा पुरुष की होती है, यदि चैतन्य के अभ्यास से जड़ता मानें तो ज्ञान की प्राप्ति कैसे होगी अर्थात् अभ्यास करते ही पुरुष जड़ हो जावेगा और वादी चैतन्य के तीव्र अभ्यास को ही जड़ होने में कारण मानता है यह अर्थ सर्वथा अयुक्त, मिथ्या है।

वेदान्त में जड़वत् जीवन्मुक्तों को वर्णन किया है उसकी निर्दोष व्यवस्था पहिले की गई है और आगे विस्तार पूर्वक की जावेगी ॥१३॥

भेदः केन समाधौमेजन्यते कथमेव वा। आत्मनोऽव्यतिरेकेण नित्यमेव सदात्मता ॥१४

होय समाधी भेद किम, कैसे लखे अनेक। ब्रह्मातम अद्वै सदा, आतम निष्ठा एक ॥१४

प्रश्न—मेरे संशय दूर करने के लिये प्रबल युक्तियों द्वारा इसी अर्थ की निर्दोष व्यवस्था कीजिये।

उत्तर—जीवन्मुक्तों में जड़ता मानने वालों से यह पूछना चाहिये कि चैतन्य से अभिन्न अथवा भिन्न जीवन्मुक्त जड़ होता है प्रथम पक्ष वदतोव्याघात दोष संयुक्त हुआ असंभव और महान् अनर्थ का हेतु होवेगा और द्वितीय पक्ष मानने पर ज्ञान तथा समाधि दोनों का अभाव सिद्ध होता है।

राज योग समाधि में स्थित मेरे को कैसे और किस में भेद हो सकता है, अर्थात अद्वैत ब्रह्मात्मा से भिन्न सर्व पदार्थ असत्य हैं, यथार्थ ब्रह्मज्ञान होने पर अद्वैत ब्रह्मात्मा की सत्ता शेष निश्चय होती है।

ब्रह्मज्ञान की अवधि रूप सप्तम भूमिका में जड़ता [अज्ञान] कहना नहीं बनता इसमें कारण यह है कि जब सप्तम भूमिका में स्थिति होती है तब अद्वैत चैतन्य की स्फूर्ति होती है जड़ता आदि कुछ नहीं रहती। फिर अन्धता मूकता, जड़ता माननी कैसे संभव हैं किंतु तीनों कालों में नहीं बनतीं। और जड़ता आदि मानने वालों से यह भी पूछना चाहिये कि चैतन्य स्वरूप जड़ होता है अथवा देह, अन्तःकरण आदि, पहिला पक्ष सर्वथा असम्भव, सब अनर्थों का कारण है और द्वितीय पक्ष मानना भी अयुक्त है यानी देह, अन्तःकरण आदि जड़ भूतों का कार्य होने से स्वतः जड़ स्वरूप हैं उनकी जड़ता यत्न साध्य नहीं होसकती है जो वेदान्त के सिद्धान्त से रहित मूर्ख हैं वह भी ऐसी गड़गड़ नहीं करते तब बुद्धिमान कैसे विपरीत अर्थ मान सकते हैं।

जिज्ञासा काल में अनेक साधनों द्वारा जड़ता दूर की जाती है यदि चैतन्य (ज्ञान) के अभ्यास करने पर पुनः जड़ता प्राप्त हो तब इससे अधिक आश्चर्य और अनर्थ क्या होगा किंतु चैतन्य के अभ्यास को ही सर्व दुःख व अज्ञान की कारणता सिद्ध होने से वादी का पूर्व पक्ष शोचनीय और वेद, वेदांत से विरुद्ध मिथ्या है।

पहिले सर्व कथन से यह स्पष्ट हुआ कि जीवन्मुक्तों में जड़ता, मूकता, अन्धता आदि कभी नहीं होतीं किंतु नित्य ज्ञान व आनन्द होता है और जड़ता मूर्खों के आश्रित रहती है ॥१४॥

यथास्थित मिदंयस्य व्यवहारवतोपि च। अस्तं गतं स्थितं व्योम जीवन्मुक्तःस उच्यते॥१५

दैवाधीन व्यवहार सब,थिर यह जगत अभाव। भासे शून्य अकाश सम,जीवन्मुक्तप्रभाव॥

प्रश्न–उच्च भूमिका में स्थित हुये जीवन्मुक्त विद्वानों में आनन्द की अधिकता होती है अथवा इस का रहस्य (भाव) कुछ और है।

उत्तर–स्वरूप भूत आनन्द किसी साधन कर साध्य व उच्च भूमिका में अधिक व उत्थानता में न्यून और किसी काल में आने व जाने वाला नहीं किंतु नित्य प्राप्त एक रस स्वतः सिद्ध अपना स्वरूप है। जो ब्रह्मानन्द को देश, काल, वस्तु के परिच्छेद सहित मानते हैं वह अपने से भिन्न किसी अन्य पदार्थ को आनन्दरूप मानते होंगे।

अभ्यास से प्रारब्ध का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता, तीव्रतर प्रारब्ध भोग कर निवृत्त होती है, यह अर्थ सर्व वेद वेदान्त से सिद्ध व निर्दोष है।

अपनी २ प्रारब्ध के अनुसार यथोचित व्यवहारोंको करता हुआ विद्वान् यथार्थ ज्ञान दृष्टि से सर्व जगत् को तुच्छ[असत्य]जानता है,इसीलिये ब्रह्मात्म के अद्वैत ज्ञान को ही सर्व वेद वेदान्त और सर्वज्ञों ने जीवन्मुक्त पद वर्णन किया है।

वैराग्य व अभ्यास आदि द्वारा व्यवहारों के यथा संभव अल्प होने पर विक्षेप दुःख से रहित विद्वानों को दृष्ट सुख की प्राप्ति होती है। यह सुख भी व्यवहारक है पारमार्थिक नहीं।

जो वादी आनन्द को आता जाता व न्यूनाधिक होता जानते हैं, वह किसी तुच्छ अनात्म पदार्थ को आनन्द स्वरूप जानते होंगे। नित्य प्राप्त अपने स्वरूप आनन्द में यत्न, साध्यता व न्यूनाधिकता कदाचित हो नहीं सकती। अर्थात् ब्रह्मानन्द को व्यभिचारी व प्रयत्नों कर सिद्ध होना मानना महान् अज्ञान का सूचक है।

जहाँ वेदान्त में उच्च भूमिका के प्राप्त होने पर आनन्द की विशेषता लिखी है उसका यथार्थ भाव यह है कि निश्चयात्मक आनन्द की दृढ़ता होती है अर्थात् जब तक आनन्द अपना स्वरूप निश्चय नहीं किया, तब तक ज्ञान कैसे माना जा सकता है और ब्रह्मानन्द को अपना स्वरूप निश्चय कर लेने पर उस आनन्द के लिये साधन व इच्छा कैसे हो सकेगी। जैसे दिये के नीचे अन्धकार होता है तैसे ही जिनको केवल श्रोत ज्ञान है, उनमें ऐसे २ विपरीत भाव प्रगट होते रहते हैं॥१५॥

आत्मन्येवास्वशांतात्मामूकांधवधिरोपमः।नित्यमंतर्मुखोभूत्वास्वात्मनांतःपरिपूर्णधी।।१६

अंध वधिर हो तुल्य जड़,अंतरमुखता चीन।व्यापक निश्चय शान्तमन,निष्ठा आतम बीन।।

प्रश्न—जीवन्मुक्त अभ्यास द्वारा अन्धा, जड़, मूक (गूंगा) वधिर (बहरा) होता है, अथवा इनके प्रतिपादक वाक्यों की व्यवस्था कुछ और है ?

उत्तर—वेदान्त में जीवन्मुक्तों की जड़ समाधि नहीं मानी, किन्तु चैतन्य के अभ्यास से जगत् को असत्य निश्चय करते हुये, अद्वैत निष्ठा रूप सबोध समाधि वर्णन की है, इसलिये जीवन्मुक्त जड़ अन्ध नहीं होता और चैतन्य के अभ्यासका फल बुद्धि व इन्द्रियों की विकलता और विनाश वेदान्त सिद्धान्त में अंगीकार नहीं, वल्कि ब्रह्म चैतन्य के अभ्यास करने पर विशेष दक्षता (ज्ञात ज्ञेयता) होनी चाहिये और होती भी है।

निरंतर अभ्यास करने पर जीवन्मुक्त सर्व संशय, विपर्य्य से रहित हुआ गौणी वृत्ति से अंध, जड़, मूक, वधिर वर्णन किया है; अर्थात् जगत् के सत्य नहीं देखने पर अंधवत्, ब्रह्मको वाणीका अगोचर निश्चयकर मूकवत्, बुद्धि का अविषय ब्रह्मको जानकर जड़वत् जीवन्मुक्तको वेद, वेदान्त में लिखा है। जैसे सरल मनुष्य को गऊ व मूर्ख को गधा सा लोक में कहते हैं वह गऊ, गधा नहीं होते किन्तु गऊ व गधे के गुणों से वही संज्ञा पाते है तैसे ही गौणीवृत्ति से जीवन्मुक्तों को अंध, जड़, मूक कहना सम्भव है और कोई भी जीवन्मुक्त अभ्यास के प्रभाव से अंधा, जड़, मूक, वधिर नहीं होता।

जैसे रसना जीतने वालों को अजिह्वा, विषय त्यागी को खण्डक(नपुंसक), संयम पूर्वक व्यवहार करने वाले को पङ्गु, निन्दा, स्तुति सहन करने वाले को वधिर,आत्म में लवलीन को मुग्ध वेदान्त में लिखा है, तैसे ही एकर गुण को ग्रहण करके गौणी वृत्ति से जीवन्मुक्तोंको अन्ध आदिवत् लिखा है।

पहिले सर्व कथन का भाव यह है कि ब्रह्म चैतन्य के दृढ़ अभ्यास करने पर जीवन्मुक्त सर्व संशय, विपर्य्य से मुक्त आत्मरामी (नित्य ज्ञान निष्ठ) होता है, इस सिद्धान्त को नहीं जानकर विपरीति कथन अविचार सिद्ध है।।१६।।

बुधो बाल वत्क्रीढ़ते कुशलो जड़वच्चरेत्। वदेदुन्मत्त वद्विद्वान् गोचर्यानैगमश्चरेत् ॥१७

विचरे ज्ञाता बाल जिम, दत्त जड़ोंवत होइ। कर कथनी सम बावरे,तीन विपर्यय खोइ॥

प्रश्न—मेरे बोध की दृढ़तार्थ पहिले कहे भावों को पुनः वर्णन कीजिये।

उत्तर—जैसे बालक वर्णाश्रम के अभिमान आदि से रहित होता है तैसे ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से जीवन्मुक्त अभिमान से रहित व्यवहार करता है, इस प्रकार बालक के गुणों सहित बालवत् और अनात्म पदार्थों को जड़ निश्चय करने पर अथवा कुसंग के भय से जड़भरत की नांई उदासीन रहने से जड़-वत् और तत्वज्ञान द्वारा कर्त्ता, भोक्ता बुद्धि के त्यागने पर उन्मत्त के समान लिखा है क्योंकि बावरों को कर्त्ता, भोक्तापनेका ज्ञान नहीं रहता। यानी अहंकर के त्याग से बालवत्, कर्तृत्व आदि के अभाव से उन्मत्तवत्, जगत् को जड़ मानने से जड़वत्, जीवन्मुक्तों को जानना चाहिये। इस भाव को नहीं समझ करके जीवन्मुक्त में बुद्धि व इन्द्रियों की विकलता मानना असम्भव है और वेदान्त नियमों से विपरीत है।

वेद, वेदान्त का प्रबल उद्देश्य यह है कि साधनों की दृढ़ता द्वारा मुमुक्षु ब्रह्मात्मा को नित्य अकर्त्ता, निर्विकार, अद्वैत निश्चय करे और विद्वानों के लक्षण व व्यवहार जो २ शास्त्रों में वर्णन किये हैं वह भी अधिकारियों के ज्ञान दृढ़ता के लिये लिखे हैं और ब्रह्मज्ञान स्वसंवेद्य है इस लिये विद्वानों के लक्षणों में कुछ नियम नहीं। श्रुति ब्रह्म को नेति, नेति कहती है, जीवन्मुक्तों की अन्तर ब्रह्मनिष्ठा को दूसरा कैसे जान सकता है, अधिकारियों के बोध दृढ़तार्थ गौणी वृत्ति से जीवन्मुक्त के अन्धता आदि लक्षण वेदान्त में वर्णन किये हैं, इससे अन्यथा जानना व कहना आग्रह अथवा अज्ञान प्रयुक्त है। इस अर्थ की निर्दोष व्यवस्था आगे विस्तार से प्रतिपादन करेंगे उस को जिज्ञासु समझ करके वादियों के कल्पित अन्यथा भावों को दूर कर संशय, विपर्य्य से रहित हुआ ब्रह्मात्मा में विश्राम पावेगा।

यह अर्थ जिन को विस्तार सहित जानना इष्ट हो वह अष्टावक्र गीता के सिद्धान्त रूप निष्कर्त्तव्यता २७ विभास से देख सकते हैं ॥१७॥

सर्वभाव विनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत्। एतद्ध्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रन्थविस्तरः ॥१८
चित्त सत्ता परं दुःखं चित्तासत्ता परं सुखम्। अतश्चित्तं चिदेकात्मानमक्षयं वेदनात् ॥१६

लखे असत सब भाव को, जीव ब्रह्ममय एक। ध्यान ज्ञान है श्रेष्ठ यह, कहते ग्रन्थ अनेक॥
चित्त अनर्थहि सभी विधि, चित्त नाश सुख रूप। चेतन धारण युक्त हो, हंता चित्त स्वरूप॥

प्रश्न–जीवन्मुक्त विद्वानों को समाधि का स्वरूप वर्णन कीजिये।

उत्तर–सांसारिक सर्व पदार्थों को असत्य निश्चय करके अद्वैत ब्रह्म का लक्ष्यार्थ जानना जीवन्मुक्तों का ध्यान अर्थात् समाधि है और यही तुर्यगा सप्तम भूमिका है, इसमें जीवन्मुक्त स्थित होता है।

वेद, वेदान्त का सर्व कथन केवल बोध दृढ़ता के लिये है और जो अवान्तर विस्तार है, वह जिज्ञासुओं के विलक्षण २ संस्कारों जनित भावों के अनुसार शास्त्र वर्णन करते हैं, अर्थात् ज्ञाननिष्ठा से भिन्न जीवन्मुक्त की अफुर रूप जड़ समाधि मानना वेदान्त के सिद्धान्त से विपरीत है ॥१८॥

आगम, निगमके सम्पूर्ण वाक्य मुमुक्षुओं के संशय, विपर्य्य के निवृत्ति के लिये हैं, जैसे वैद्यक शास्त्रों का सर्व उपचार रोग की निवृत्ति के अर्थ होता है।

जब लग शरीर आदि में अहं, मम है तब तक जन्म, मृत्यु के दुःख दूर नहीं होते, और चित्त (अहंकार) के अभाव होने पर ब्रह्मानन्द अपना स्वरूप निश्चय होता है।

प्रथम सर्व कथन का रहस्य यह है कि जब तलक अनात्मा में अभिमान बन रहा है, तब लग संशय, विपर्य्य व सांसारिक कष्ट दूर नहीं होते। वेदान्त वाक्य व सद्गुरु के उपदेश अनुसार वैराग्य, अभ्यास द्वारा जब अहंकार निवृत होता है तब सर्व बन्धन टूट जाते हैं, अर्थात् केवल देह अभिमान के दूर होने पर कर्तृत्व, भोक्तृत्व व संसार की सत्यता आदि विपर्य्य नष्ट होकर परम पद प्राप्त होता है, इस प्रकार सर्व मूल वासनाओं (विपर्य्यों) से रहित जीवन्मुक्त निरंतर समाधिनिष्ठ माना जाता है, उस समाधि से विष्णु आदि भी उत्थान नहीं कर सकते।

जब तक ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता नहीं होती तब तलक मनोनाश, वासनाक्षय और तत्व ज्ञान का सदा अभ्यास करना चाहिये, अन्यथा ज्ञान दृढ़ नहीं होता, अतः उत्तम अधिकारियों को यह उचित है कि सांसारिक सम्पूर्ण वासनाओं को वैराग्य, अभ्यास द्वारा त्याग करके सदैव अद्वैत निष्ठा करें ॥१६॥

प्रारब्धं बलवत्तारं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः।
सम्यग् ज्ञान हुताशनेन विलयः प्राक् संचितागामिनाम् ॥२०
सुखदुःखे जन्ममृत्यू दैवादेवेति निश्चयी। साध्यादर्शी निरायासः कुर्वन्नपि न लिप्यते॥२१

दृढ़ प्रारब्धहि कर्म यह, होंइ भोगकर छीन। अगले संचित कर्म सब, पावक ज्ञान जरीन॥
जन्म मृत्यु सब दुःखसुख, निश्चय दैवाधीन। लखु असाध्य आयास बिन, रहे अलिप्त प्रवीन॥

प्रश्न—ब्रह्मज्ञान के दृढ़ अभ्यास करने पर प्रारब्धका अभाव होता है वा नहीं, इस अर्थ को स्पष्टता पूर्वक प्रतिपादन कीजिये।

उत्तर—शास्त्रों में जीवों की प्रारब्ध तीन प्रकार से मानी है अर्थात् कोमल, तीव्र, तीव्रतर। इसके अनुसार सर्व प्राणी सुख, दुख को भोगते और शुभाशुभ व्यवहारोंको करते हैं, परन्तु विचार द्वारा यथा योग्य प्रयत्नों के होने पर मनुष्य अनात्म वासनाओं व कष्टों को यथा सम्भव निवृत कर सकता है, यानी कोमल प्रारब्ध को अल्पयत्न से और तीव्र को विशेष प्रयत्न द्वारा मनुष्य दूर कर सकता है, ज्ञानी व अज्ञानी सबमें यह नियम समान है, अर्थात् कोई भी मनुष्य ठीक २ यत्न करे तब दो विधि की प्रारब्ध को यथोचित यत्न से निवृत्ति कर सकता है, बिना उपाय किये मनुष्य पशुओं के तुल्य है।

अनेक जन्मों में संग्रह (संचित) किये कर्म आवर्ण के आश्रित रहते हैं वह ज्ञानाग्नि कर दग्ध होते हैं व आगामी (ज्ञान के पीछे किये) कर्मों का फल ज्ञानी नहीं भोगता और तीव्रतर प्रारब्ध असाध्य रोग के समान किसी प्रकार टल नहीं सकती, किन्तु भोग कर ही निवृत्ति होती है।

पहिले सब कथनका भाव यह है कि अभ्यास आदिकर बलवान प्रारब्ध का भी अभाव होता माने तो अभ्यास काल में ही विदेह मुक्त होने पर वेदान्त संप्रदाय का अभाव होगा तब ज्ञान के उच्छेद हुये महान् अनर्थ होगा ॥२०॥

सुख, दुःख व जन्म मृत्यु, यह चारों निश्चय कर प्रारब्ध के आधीन होते हैं, इस निश्चय द्वारा उनको मिथ्या जान कर अहंकार व कर्तृत्व और जगत् की सत्यता से रहित हुआ विद्वान् पुनरावृत्ति से मुक्त होता है।

बन्धन का कारण जीवोंको अपनी वासनायें हैं, ईश्वर सृष्टि सुख, दुःख और बन्ध, मोक्ष का हेतु नहीं, इसलिये मुमुक्षुओं का सदा यही कर्त्तव्य है कि जगत् की मिथ्या वासनाओं को योग्य प्रयत्नों द्वारा त्याग करें।२१॥

यत्तदग्रेविषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धि प्रसादजम्॥२२
पूर्णानन्दैक बोधोहं प्रत्यगेक रसोऽस्म्यहम् । प्रशान्तोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशोहं परमेश्वरः॥२३
अहमसकृद्वि भातोऽस्मिस्वमहिम्नसदास्थितः।सच्चिदानन्दमात्रोहंस्वप्रकाशोऽस्मिचिद्घनः२४

ब्रह्मानन्दहि आदि में,कष्ट साध्य भी होइ । परिणामहि आनन्द,वर बुद्धि आत्म युत जोइ॥
चिदानन्द मैं पूर्ण सब,इकरस वृत्तियां भास।ज्ञान क्षोभ बिनरूप नित,ईश्वर सभी प्रकास॥
एक अनूप प्रकाश मम, नित हूं तेज स्वरूप। सत चेतन आनन्द घन, स्वयं प्रकाश अनूप॥

प्रश्न–अभ्यास करने पर जीवन्मुक्तों में आनन्द की विशेषता शास्त्रों में लिखी है मेरे बोध की दृढ़तार्थ इस की निर्दोष व्यवस्था कीजिये ।

उत्तर–अभ्यास आदि कर यदि आनन्द की अधिकता होती, तो विद्वान् शरीर यात्रा से भी उपराम होकर सदैव अंतर्मुख रहते, यह देखने में आता नहीं तो क्या सब ज्ञानी यथा संस्कार व्यवहार में तत्पर होने से प्रमादी व अभागी कहे जावेंगे ।

अपान वायु व खाज के तुच्छ सुख में रुके बिना शीघ्र प्रवृत्ति होती है, परमानन्द क्या अनात्म सुखों से भी निकृष्ट है कि जिस में अल्प समय स्थित होना कठिन पड़ जाता है? स्पष्ट है कि विद्वान् आनंद को अपना रूप जानता है,अर्थात् वह कहीं बाहर से आने वाला और न्यूनाधिक होने वाला नहीं । भगवद्गीता में लिखा है कि प्रथम साधन काल में विष समान और परिणाम में अमृतके तुल्य,आत्म बुद्धि (ज्ञान) से स्फूर्ण होने वाला,आनन्द सात्विक है । अतः विद्वान् ज्ञान प्राप्ति काल में ही परमानन्द को प्राप्त होता है॥२२॥

देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित एकरस व नित्य प्राप्त पूर्णानन्द अद्वैत चैतन्यात्मा सर्व वृत्तियों का प्रकाशक अर्थात् भूत, भौतिक सब जगत् को सिद्ध करने वाला तथा उत्पत्ति आदि षट् विकारों से रहित केवल शान्त रूप ब्रह्म में हूँ । नित्य प्राप्त स्वरूपानन्द से भिन्न अभ्यास कर अधिक होने वाला और उत्थान में न्यून होने वाला आनन्द ब्रह्मात्मा से भिन्न विकारी मानना पड़ेगा ॥२३॥

मैं ब्रह्मात्मा सर्वदा प्रकाश स्वरूप निर्विकार हूँ । साधनों कर सिद्ध होने वाला आनन्द सत्य, चैतन्य नहीं हो सकता । जीवन्मुक्त अपने से भिन्न विकारी, व्यभिचारी आनन्द की इच्छा प्रयत्न नहीं कर सकता ॥२४॥

भूमि षट्क चिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलंभतः। तत्स्वभावैक निष्ठत्वं साज्ञेया तुर्यगा गतिः॥२५
जाग्रत्स्थयेव सुपुप्तस्थः कुरु कर्माणि राघव। अंतः सर्व परित्यागी बहिः कुरु यथा गतम्॥२६
एषाहि जीवन्मुक्तेषु तुर्यावस्थेह विद्यते। विदेह मुक्तिरविषयस्तुर्यातीतमतः परम्॥२७

भूमी षटी अभ्यास से, होइ भेद का नाश। तुर्य सप्तमी होइ जब, यह निष्ठा सुख राश॥
चेष्टा करे सुषुप्ति लखु, अद्वै निष्ठा होइ। हृदय मध्य नहिं कर्म कर, यथा प्राप्ती सोइ॥
तुर्य अवस्था सप्तमी. जीवन्मुक्तहि योग। तुर्य अतीतहि देह तज, मुक्ति विदेही होग॥

प्रश्न—अनेक मनुष्य सप्तमी भूमिका में स्थित जीवन्मुक्त को निष्क्रिय होता मानते हैं, इस का यथार्थ भाव समझा करके कहिये।

उत्तर—षष्ठी भूमिका के दृढ़ अभ्यास करने पर सर्वाधिष्ठान ब्रह्मात्मा में द्वैत (भेद) का अभाव निश्चय करके तुर्यगा रूप सप्तम भूमिका जीवन्मुक्त की होती है ॥२५॥

जाग्रत के व्यवहार करते भी अद्वैत निष्ठारूप सुषुप्ति अवस्था गौणी वृत्ति से जीवन्मुक्त में मानी है, इसलिये पतित प्रवाह (यथा प्राप्त) व्यवहार करते हुये भी सुषुप्तिवत् अन्तर त्यागी (जीवन्मुक्त) होता है, उस का देह यात्रा आदि से वास्तविक कुछ सम्बन्ध नहीं रहता, अतः सदैव मुक्त रूप है।

षष्ठी भूमिका में अधिक अभ्यास से प्राप्त होने वाली तुर्यगारूप सप्तमी भूमिका जीवन्मुक्त की होती है और प्रारब्ध कर्मों के भोग कर क्षय हुये विदेह मुक्त प्राप्त होती है ॥२६॥

कहीं चतुर्थ भूमिका में मुक्ति लिखते हुये पश्चात् वासना क्षय, मनोनाश, तत्त्व ज्ञान के अभ्यास की कर्त्तव्यता इस कारण शास्त्र में वर्णन की है कि अनेक मनुष्य केवल ब्रह्म के विशेषणों को सुन कर विशेष अभ्यास किये बिना भोगों में आशक्ति हुये अपने को कृतार्थ (पूर्ण ज्ञानी) मान कर पुरुषार्थ से भ्रष्ट होते दीखते हैं उनके लिये ज्ञान के पश्चात् वासनाक्षय आदि का कर्त्तव्य लिखा है, अर्थात् जब तक साधन परिपक्व नहीं होते तब तलक ज्ञान दृढ़ नहीं होता, इस लिये सर्वज्ञों ने वैराग्य, उपरति, अभ्यास को ही वासना क्षय, मनोनाश, तत्त्व ज्ञानका अभ्यास नियत करके ज्ञान के पीछे जीवन्मुक्ति के आनन्द की विशेषता दिखाकर इनका कर्तव्य वर्णन किया है, परन्तु ज्ञान दृढ़ होने पर साधनों की कर्त्तव्यता नहीं रहती॥२७॥

यद्विचित्रं क्रिया जालं दृश्यतेगम्यते पुनः। रामवस्तु स्वभावो सौ न तदात्म विदां मतम् २८
अनात्मविद् मुक्तोपि नभो विहरणादि कम्। द्रव्य कर्मक्रिया काल शक्त्या प्राप्नोति राघव॥२९
न तस्यार्थो न भोगत्या न सिद्धयान च भोगकैः। न प्रभावेणनो मानैर्नाशामर्णं जीवतैः॥३०

गमनाकाशहि क्रिया सब,ज्ञानी इष्टहि नाहि। मच्छर पक्षी उड़ें बहु,इनमें सुख फिर काहि॥
ज्ञानी अज्ञहि यत्नकर लहत सभी बहु सिद्ध। योग क्रिया परिपाक से, होवे शक्ति प्रसिद्ध॥
विज्ञपुरुप नहि कामना,तुच्छ सिद्ध उपराम। मान प्रतिष्ठा चहे कब, जन्म मृत्यु नहिं काम॥

प्रश्न—ब्रह्मवेत्ता के व्यवहार अज्ञानियों के तुल्य होते हैं अथवा सिद्धि को प्राप्त होकर सर्वज्ञ होते हैं, यह स्पष्ट कहिये।

उत्तर—देशान्तर में तत्काल पहुँच जाना व शरीर को सूक्ष्म करना और भूत, भविष्य का ज्ञान इत्यादि सिद्धियां विद्वानों को सुख रूप नहीं भासतीं, तथा कुछ अलौकिक भी नहीं, क्या पक्षी, मच्छर नहीं उड़ते और भूत प्रेतों में पहिली हुई कहीं बातें नहीं पाई जाती हैं ?

यम, नियम आदि साधन कठिन हैं और निष्कामता होनी अति दुर्लभ है तथा सिद्धि की प्राप्ति होने पर केवल मान, प्रतिष्ठा लौकिक उन्नति होती है, पारमार्थिक नहीं, इसलिये निष्काम पुरुप इनमें आशक्ति नहीं होते ॥२८

पहिले युगों में अज्ञानी मनुष्य भी साधनों द्वारा प्राणायाम करते हुये सिद्धियों को प्राप्त हो सकते थे, अब बहुत कठिन हैं। प्राणायाम आदि क्रिया साधने पर सिद्धियां प्राप्त होती हैं पर ब्रह्मज्ञान के साधन व फल इन से न्यारे हैं बल्कि सिद्धियां ज्ञान प्राप्ति में प्रतिबन्धक मानी हैं ॥२९॥

पहिली कही सिद्धियों के होने पर सांसारिक विशेषता होती है, निष्काम विद्वान् इनको नहीं चाहते और दीर्घ काल जीना व स्वच्छित मृत्यु होना इत्यादि वासनाओं से अतीत विद्वान् परमानन्द रूप कैवल्य पद में विश्राम पाते हैं, इसलिये मुमुक्षुओं को यही उचित है कि जगत् की मिथ्या वासनाओं को त्याग कर सदैव ब्रह्म अभ्यास का अवलम्बन करें। इस सर्व प्रसंग से यह स्पष्ट हुआ कि ज्ञान की इच्छा वाले और ज्ञाननिष्ठ पुरुषों को सिद्धियों से कुछ प्रयोजन नहीं ॥३०॥

लक्ष्य सर्व रूप विभास (२२)

आतमैव वेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्। एतद्ब्रह्मै तत्सर्वम् नारायणएवेदं सवम्॥१
सत्तामात्रं हीदं सर्वं सत्स्वरूपमेवेदं सर्वम्। स एवसर्वम् यद्भूतं यच्चभव्यं सनातनम्॥२
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णु स्वयंमिन्द्रः स्वयंशिवः। स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यत्र किंचन॥३
मरुभूमो जलं सर्वं मरूभूम्मात्रमेवतत। जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रस्वविचारतः॥४

उत्तम अमृत ब्रह्म यह, लखो आत्मा जोइ। ब्रह्म एक यह सर्व गत, नारायण है सोइ॥
अनूप केवल सत्यसो, निश्चय यह सद्रूप। भूत भविष्यत नित्य पद, वही अनादि स्वरूप॥
हरिब्रह्मा भी आप लखु, शिवहि इन्द्र सो आप। स्वयं वहीहै जगत सब, और भिन्न नहि जाप
मृगवारी है भूमि मरु, मरू भिन्न नहिं वारि। जान त्रिलोकी ब्रह्मइक, यह विचार चिद् सार

प्रश्न—ब्रह्म लक्ष्यता की मुझको तीव्र इच्छा है, अतः इस अर्थ को केवल वेद वाक्यों के द्वारा वर्णन कीजिये।

उत्तर--ब्रह्मात्मा (वास्तव यथार्थ दृष्टि) से अलक्ष्य (छिपा हुआ) नहीं, किन्तु अमृत रूप स्वयं ज्योति माया आदि सर्व जगत् का अधिष्ठान है, केवल भ्रान्ति दृष्टि से नाम, रूप, क्रियात्मिक संसार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, ज्ञान द्वारा दृश्य को मिथ्या जान लेने पर ब्रह्मात्मा अपरोक्ष निश्चय होताहै॥१॥

ब्रह्म सदैव सत्य स्वरूप है और जगत् कल्पित रूप है, अर्थात् भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों सहित सर्व जगत् रचना वास्तविक अद्वैत ब्रह्म है, परन्तु अलक्ष्यता केवल अज्ञान से है, जब निष्काम महात्माओं की युक्तियों द्वारा अभ्यास किया जावे तो ब्रह्मात्मा सदा अपरोक्ष (लक्ष्य) है इसके निश्चय होने पर सर्व बन्धन टूट कर पुनरावृत्ति से रहित हुआ विद्वान् निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है॥२॥

अज्ञानियों को भ्रान्ति दृष्टि कर निर्गुण परमात्मा ही हरि, हर, ब्रह्मा इन्द्र आदि सर्व संसार रचना हो भासती है परन्तु विद्वानों को ज्ञान दृष्टि से एक ब्रह्म निर्विकार सत्य रूप विद्यमान होता है॥३॥

जैसे मरुभूमि में भ्रान्ति से प्रतीत हुआ मिथ्या जल अनेक लहरं संयुक्त भासता है और यथार्थ दृष्टि से देखा जाय तो श्वेत रेता है ऐसे ही भ्रांति करके भासता हुआ सर्व जगत् मिथ्या है। परन्तु संसार के सत्य होते हुये अज्ञानियों को सत्य स्वरूप ब्रह्मात्मा अलक्ष्य होता है॥४॥

भव वर्जित चिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्र मेवहि। यत्किंचिचन्नकिंचिशसर्वं चिन्मात्र मेवहि॥५
अखण्डैक रसं सर्वं यद्याचिन्मात्रमेवहि। भूतंभव्यं भविष्यञ्च सर्वं चिन्मात्रमेवहि॥६
ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्चसर्वं चिन्मात्रमेवहि। यञ्च यावद्यदूरस्थ सर्वं चिन्मात्रमेवहि॥७
चिन्मात्रास्ति लक्ष्यं चसर्वं चिन्मात्रमेवहि। आत्मनोऽन्यागतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत्॥८
सर्वं च खल्विदं ब्रह्म नित्यं चिद्धनमक्षतम्। समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्म देमाततम्॥९
नत्वं नाहं न चान्यं वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम्। न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न चिन्मयम्॥१०

दृश्य रहित चेतन वपु, मैं हूँ चिदी अपार। जग है अथवा नहीं कुछ, चेतन सभी सुसार॥
भेद रहित सब एक रस, जो यह चिद्वपु भान। तीन काल में सिद्ध वह, चेतन रूप पिछान॥
दृष्टा चेतन रूप लखु, सभी चिद्मयी होय। जोई जितना दूर ढिग, जानों अनुभव सोय॥
लक्ष्य भिन्न नहिंबोधसे, सबवह रूप प्रकाश। सबकी अवधी आतमा, यहजग आतम भाश॥
निश्चय यह सब ब्रह्म है, सत चेतन अविनाश। सम्पूरण जग ब्रह्म वपु, व्यापक दृश्य प्रकाश॥
तू मैं और न भिन्न कुछ, केवल ब्रह्म अपार। मैं हूँ जहाँ न तू वहाँ, सो तत नहीं नकार॥

प्रश्न–दृश्यमान सर्व जगत् में पूर्ण कौन तत्त्व है सो कहिये।

उत्तर–मन, वाणी के विषय भूत सर्व पदार्थों में एक चिदाकाश व्यापक है वास्तविक दृष्टि से वह सर्व से अतीत (परे) है अर्थात् सब संसार के मिथ्या निश्चय होने पर केवल चैतन्य मात्र है॥५॥

ब्रह्म चैतन्य भेद, छेद से रहित एक रस पूर्ण है और सर्व प्रपंच तीनों कालों में असत्य होने से ज्ञान स्वरूप अद्वैत है॥६॥

ज्ञाता (जीव) भी चिद्रूप है और प्रत्यच, अप्रत्यक्ष सर्व पदार्थ चैतन्य स्वरूप हैं उस चिदाकाश से भिन्न कोई पदार्थ सत्य नहीं॥७॥

स्थावर, जंगम रूप जगत् के सर्व पदार्थों में लक्ष्य एक चैतन्यात्मा है उस चैतन्य से भिन्न कोई भी पदार्थ सत्य नहीं, सब जगत् के बाध द्वारा पूर्ण चैतन्यात्मा एक है॥८॥

सम्पूर्ण जगत् के अत्यन्ताभाव होने से अद्वैत ब्रह्म का साचात्कार होता है, आत्मा सदा अविनाशी है अर्थात् बाह्य दृष्टि से जगत् के प्रतीत होते हुए भी परमार्थ दृष्टि से अद्वैत ब्रह्मात्मा है, वह परोच, अपरोच रूप जगत् यानी तत्पद (ईश्वर) व त्वं पद (जीव) सर्व ब्रह्म स्वरूप हैं॥९॥

तू, मैं, इत्यादि सर्व जगत् के मिथ्या निश्चय हुए एक ब्रह्म है, अर्थात् वास्तव से न तू, न वह, न मैं हूँ, किन्तु सर्व का लक्ष्य चैतन्य सत्य है॥१०॥

भ्रान्तिर्भ्रान्तिर्नास्त्येव सर्वं ब्रह्मैव केवलम्। न देहो न चकर्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम्॥११
ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयंब्रह्मैव केवलम्। ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्म मात्रं जगत्त्रयम्॥१२
सर्वधर्मान्परित्यज्यनिर्ममोनिरहङ्कारोभूत्वाब्रह्मष्ठिःशरणमुपगम्यतत्त्वमसिसर्वंखल्विदंब्रह्म॥
नेहनानास्ति किंचनेत्यादि महावाक्यार्थानुभवज्ञानाद्ब्रह्मवाहमस्मीति निश्चत्य॥१४
निर्विकल्पकसमाधिनास्वतन्त्रोयतिश्चरति ससन्यासी समुक्तः।
स पूज्यः स योगि स परमहंसः स अवधूतः स ब्राह्मणइति॥१५

भ्रान्ति अभ्रान्ती नहीं दो, केवल ब्रह्म प्रधान। देह सभी नहिं कर्म कुछ, शुद्ध ब्रह्म सब जान॥
ब्रह्मरूप है श्रवण भी, स्वयं ब्रह्म सब चीन। ज्ञान रूप सब ब्रह्म है, ब्रह्म त्रिलोकी चीन॥
सब धर्मों को बाध पुनि, तज ममता हंकार। सो तू है जग एक सब, शरण ब्रह्म की धार॥
अनेकत्व नहिं ब्रह्म में, जान अर्थ वर वाक। ब्रह्म ज्ञानमय एक हूँ, परम समाधी छाक॥
धर निश्चय विचरो अभय, मुक्त त्यागी मानाहंसः योगी पूज्य सब, अवधू ब्राह्मण जान॥

प्रश्न--सर्व जगत् का बाध और केवल ब्रह्मात्मा निष्ठा को वर्णन कीजिये।

उत्तर--अज्ञान (भ्रान्ति) व ज्ञान (अभ्रान्ति) इन दोनों को मिथ्या निश्चय करके ब्रह्म ही शेष रहता है, अर्थात् वास्तव में भाव, अभाव आदि कोई भी पदार्थ सत्य नहीं, मर्यादा सहित सर्व दृश्य (जगत्) अद्वैत ब्रह्म स्वरूप है॥११॥

कानों से सुने सर्व पदार्थ और मैं तू, सर्व ब्रह्मात्मा एक है, अर्थात् मन, वाणी का विषय सम्पूर्ण जगत् लक्ष्य ब्रह्मात्म है॥१२॥

ब्रह्मनिष्ठ (सद्गुरु) की शरण को प्राप्त होकर, तत्वमसि आदि महावाक्यों के श्रवण व मनन आदि द्वारा मुमुक्षु, धर्म, धर्मी रूप सर्व जगत् को मिथ्या निश्चय करके देह अभिमान आदि विपर्य्यय से रहित हो सम्यक् बोध को पाता है॥१३॥

ब्रह्मात्मा में नानत्व (भेद) कदाचित् नहीं, इस प्रकार के उपदेश द्वारा अद्वैत स्वरूप का अनुभव हुए मैं निर्विकार ब्रह्म हूँ, इस निश्चय की दृढ़ता से ज्ञानवान् पुरुष सर्व जगत् का अत्यन्ताभाव जान कर अद्वैत निष्ठा रूप समाधि को प्राप्त हो करके कृतार्थ होता है॥१४॥

अद्वैत (एक) चैतन्य के निश्चय से विद्वानों को श्रुति उत्तम सन्यासी, समाधिनिष्ठ, परमहंस, अवधूत और जीवन्मुक्त व ब्राह्मण, वर्णन करती है, पहिले कहे सर्व पद दृढ़ ज्ञानी को प्राप्त होते हैं, और ज्ञान से रहित मनुष्यों के वर्ण व आश्रम और उनके धर्म किये हुये सफल नहीं कहे जाते किन्तु चैतन्यात्मा की निष्ठा ही वेदों का लक्ष्य है॥१५॥

स वा एप एवं पश्यन्नेवंमन्वान एवं विजानन्नात्मरति रात्मक्रीड़ आत्ममिथुनआत्मानन्द
स स्वराड़ भवति ॥१६
अध्यात्मरति रासीनो निरपेक्षो निराशिपः। सर्व द्वंद्वैर्विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥१७
समताचैवसर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्। स्वप्नेऽपियोहि युक्तः स्याज्जाग्रतीवविशेषतः ॥१८
ईदृक् चेष्टःस्मृतःश्रेष्ठो विरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम्। निर्मानश्चनहङ्कारो निर्द्वंदश्छिन्न संशयः॥१६
परानन्द रसाक्षुब्धोरमते स्यात्मनात्मनि। निर्ग्रन्थिःशाँत संदेहो जीवन्मुक्तस्यविभावनः॥२०

मनन ब्रह्म इम जानकर,रति आतम बर्ताव। आत्म चिंत आनन्द लखु,जान प्रकाश स्वभाव॥
स्थित विद्या ब्रह्म रुचि, आश नहीं शुभ गान। सवद्वंदों से रहित वपु,ब्रह्म स्थिर पहिचान ॥
पदार्थ सबमें दृष्टि सम,यही मुक्ति का रूप। स्वप्नादेखे बहुत विधि, जाग्रत तुल्य अनूप॥
ऐसी रहनी धारणा, श्रेष्ट विज्ञ सो कहित। त्याग मान अरु गर्व पुनि, संशय द्वन्द्वों रहित॥
निजानन्द लहि क्षोभ विन,ध्यान आत्मा होइ। संशय भ्रांती रहित पुनि,जीवन्मुक्ता सोइ॥

प्रश्न—वह अद्वैत ब्रह्म निष्ठा किन २ साधनों कर प्राप्त होती है ?

उत्तर—सद्गुरु द्वारा वेदान्तार्थ को श्रवण करके यथार्थ युक्तियों के मनन, निदिध्यासन रूप अभ्यास की दृढ़ धारणा से अद्वैत परमानन्द स्वरूप को निश्चय कर ज्ञानी कृत कृत्य होता है,वही आत्मरति,आत्म क्रीड़ा,आत्म मिथुन और आत्मानन्दी माना जाता है, इस प्रकार वैराग्य, अभ्यास के प्रयत्न द्वारा अद्वैत निष्ठा के प्राप्त होने पर ज्ञानी कैवल्य (ब्रह्म) भाव को प्राप्त होता है ॥१६॥

लौकिक सर्व वासनाओं को त्याग, अर्थात् राग, द्वेप व अहंता, ममता रूप अज्ञान सामग्री को छोड़कर ब्रह्मविद्या के अत्यंत अभ्यास द्वारा अद्वैत निष्ठा होती है ॥१७॥

सर्व पदार्थों में सम दृष्टि (एकता) होना मुक्ति का लक्षण है, भाव यह है कि स्वप्न सृष्टि के तुल्य दृश्यमान सर्व पदार्थों को असत्य जानकर स्वप्रारब्ध के अनुसार वर्ताव करता हुआ विद्वान् जीवन्मुक्त है ॥१८॥

देह अभिमान आदि सर्व विपर्य्यों और संशयों से रहित उत्तम धारणा वाला ब्रह्मवेत्ता सर्व सृष्टि का पूज्य और कृतार्थ होता है ॥१६॥

ब्रह्मात्मा के सदा निर्विकार निश्चय करने पर एक परमानन्द स्वरूप की निष्ठा होती है, उस कर सर्व संशय, विपर्य्य से अतीत विद्वान् जीवन्मुक्त पद को प्राप्त होता है, अर्थात् अद्वैत निष्ठावान जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२०॥

नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमःसमदर्शनः। कुर्वन्नपिनकुर्वाणश्चाभोक्ताभोक्ताफलभाग्यपि॥
अध्यात्म रति रासीनःपूर्णःपावन मानसः। नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति नकर्मभिः॥२२
जगज्जीवादि रूपेण पश्यन्नपि परात्म वित्। न तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति॥२३
बोध एक कचत्यर्थ रूपेण स च खादणुः। दृष्टांतोत्रानुभूतोंतः स्वप्न संकल्पपर्वतः॥२४
शिला जठरवत्सत्वं घनमेकमजं ततम्। सर्वं शांत मनाद्यंतमेकंविधि निपेधयो॥२५

होइ तृप्त नहीं भोक्ता, चोभ होइ सम लेख। करता भी कक्रिय सदा, निर्मल भोक्ता देख॥
ब्रह्मज्ञान निष्ठा यही,पावन अति मनजान। जपसमाधि कर नहीं कुछ,मन निराश कल्यान॥
जीव जगत व्यवहार सब, देखे ज्ञानी योग। चिद्रुपु पेखे भिन्न नहिं, ब्रह्म तत्त्व संयोग॥
नभ सूक्ष्म तुल्य बोध वपु, सो चैतन्य प्रकार। सृष्टि स्वप्न संकल्प सम,वृथा होंइ आकार॥
चिद्घन अद्वै शांत अज, सत्य अनन्त स्वरूप। विधि निपेध सो ब्रह्म लखु, परमातम इक रूप॥

प्रश्न–पहिले दिखाई अद्वैत निष्ठा का प्रभाव व प्रयोजन कहिये ?

उत्तर–जीवन्मुक्त विद्वान् भोजन आदि को नहीं करता भी नित्य तृप्त असंग निश्चय वाला व महान् व्यवहारी हुआ भी सदा निष्क्रिय है और सर्व को भोक्ता हुआ नित्य अभोक्ता है तथा विपम दशा युक्त प्रतीत होता भी सदा समदृष्टि है अर्थात् ब्रह्मवेत्ता स्वात्मा को सर्वथा असंग, नित्य अकर्त्ता, अभोक्ता (सदा मुक्त) स्वरूप जानता है ॥२१॥

ब्रह्मनिष्ठा युक्त विद्वानों को लौकिक,वदिक कर्मों के करने व त्यागने में कुछ हानि, लाभ और प्रयोजन नहीं। अद्वैत दृष्टि विद्वान् सर्व व्यवहारों को यथा प्रारब्ध करता हुआ भी सदैव चैतन्य स्वरूप है ॥२२॥

ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् यथा संस्कार सर्व व्यवहारों को करता भी वास्तव दृष्टि से उनको सत्य और अपने को कर्त्ता, भोक्ता नहीं जानता किंतु स्वात्मा को सदा मुक्त स्वरूप निश्चय करके विचरता है,उसपर कुछ विधि,निपेध नहीं॥२३

ब्रह्मात्मा आकाश आदि से अति सूक्ष्म बोध स्वरूप,नित्य,अद्वैत है परन्तु अज्ञानवश नित्यअच्युत व अद्वैतब्रह्म चैतन्यमेंमिथ्या सृष्टिकोजीवसत्य जानकर जन्म मृत्युकोप्राप्त होताहै। जैसे स्वप्नके पदार्थोंमेंसत्यताभासतीहैतैंसे प्रपञ्चमें अज्ञानियों की सत्य बुद्धि रहती है, विद्वान् जगत् की उत्पत्ति,लय और बन्ध, मोच आदि सर्व रचना को अरोपित जानता हुआ स्वस्थ रहता है ॥२४॥

सदा निर्विकारअद्वैतचैतन्यमें सर्व शब्द,अर्थ और विधि,निपेद्धआदिव्यवहार वास्तव से सत्यनहीं,इस निश्चयकेप्रभावसेविद्वान्सदा आत्मानन्दकरतृप्त व शांत रहता है और प्रारब्ध कर्मों के अभाव हुये निर्वाण पद को पाता है ॥२५॥

विद्वान् अनुभव विभास (२३)

अहो निरंजनः शान्तो बोधोहं प्रकृतेः परः। एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडंबितः ॥१॥
सशरीर महो विश्वं परित्यज्य मयाऽधुना। कुतश्चित्कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते॥२
प्रकाशो मे निजं रूप नातिरिक्तोऽस्म्यहंततः। यदा प्रकाशते विश्वं तदाहं भास एहि ॥३॥
मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति। मृदि कुंभो जले वीचिः कनके कटकं यथा ॥४
अहो अहं नमो मह्ममेकोऽहं देहवानपि। क्वचिन्न गन्ता नागन्ता व्याप्य विश्वमवस्थितः॥५
अहो अहं नमो मह्यंयस्यमे नास्ति किञ्चन। अथवा यस्य में सर्वं यद्वांमनस गोचरम् ॥६

अतीत माया शान्त वपु मूल अविद्या पार। विसमय इतना काल में,वंचित मोह अपार ॥
सहित देह यह विश्व सब,मिथ्या रूप पिछान। गुरु कृपालहि कुशलता,पाया सम्यक ज्ञान॥
प्रकाश चेतन रूप निज,ब्रह्मातम नहि भिन्न। प्रपंच करता सिद्ध सब,ब्रह्म प्रकाश अभिन्न॥
कल्पित मुझमें विश्व यह, हो मेरे में लीन। बासन माटी रूप लख, भूषण कंचन चीन॥
नमस्कार मेरी मुझे, हर्ष देह युत होय। आता जाता नहीं मैं, व्यापक हूं सब लोय॥
मेरी निजको वंदना,जग असत्य मुहि नाहि। वाणी मनका विषय जो,कल्पित मेरे माहिं॥

प्रश्न--विद्वानों के यथार्थ अनुभव को मुझे सुनने की इच्छा है।

उत्तर--माया से अतीत व उत्पति आदि षट् विकारों से परे और अविद्या (आवर्ण) से रहित मैं अद्वैत ब्रह्मात्मा हूँ, यह आश्चर्य है कि अब तक मैं अज्ञानकर विमोहित रहा ॥१॥

स्थूल देह से लेकर सब प्रपंच का अत्यन्ताभाव है, गुरु उपदेश रूप कुशलता (अनुभव दृष्टि) से मैंने ब्रह्मात्मा को यथार्थ निश्चय किया है॥२॥

सर्व दृश्य का प्रकाशक मैं साक्षी हूँ, अर्थात् मैं चैतन्य ही जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति और तीनों कालों को सिद्ध करता ज्ञान स्वरूप हूँ ॥३॥

कर्म वासना (पूर्वले संस्कारों) कर रचित सर्व जगत् का अधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ जैसे बासन मृत्तका से उत्पन्न व स्थित पुनः उसी में विलय होवे हैं तैसे ही चैतन्य स्वरूप में सर्व दृश्यमान् जगत् उत्पन्न व स्थित और लय होता है, पर वास्तव से तीनों कालों में प्रपंच हुआ नहीं ॥४॥

अति हर्ष है मैं शरीरी भासता हुआ भी लोक, परलोक में गवनागवन नहीं करता, किंतु सर्व जगत् के बाह्यान्तर व्याप्य करके स्थित हूँ, ऐसे मुक्त स्वरूप आत्मा को अभेद रूप नमस्कार है॥५॥

मेरी ब्रह्मात्मा को एकता निष्ठा रूप नमस्कार है, चैतन्य में नाम रूप सर्व जगत् तीनों कालों में हुआ नहीं ॥६॥

बोध मात्रोऽहमज्ञानादुपाधिः कल्पितो मया। एवम् विमृशतो नित्यं निर्विकल्पेस्थितर्मम॥७
नमेबंधोऽस्तिमोक्षोवाभ्रन्तिःशांतानिराश्रय। अहो मयि स्थितंविश्वं वस्तुतोनमयिस्थितम्॥८
अहो जन समूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम। अरण्यमिव संवृत्तं क रतिं करवाण्यहम्॥९
मय्यनंत महाम्भोधौ चित्त वाते प्रशाम्यति। अभाग्याज्जीववणिजो जगत्पोतोविनश्वरः॥१०
तंशान्तमचलमद्वयानंद चिद्धन एवास्मि। तत्पूर्णानन्दैक बोधस्तद्ब्रह्मैवाहमस्मि॥११॥
सच्चिदानन्दात्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोऽहमस्मि। शुद्धाद्वैत ब्रह्माहमवाचामगोचरम्॥१२

बोध रूप अज्ञान वश,कल्पित करी उपाधि। सदा विचार स्वरूप से,हुआ मैं निरोपाधि॥
बन्ध मोक्ष दोनों नहीं,अमूल्य भ्रान्ती नाश। कल्पित मेरे मध्यलखि,वास्तव नहिं जग राश
जन समूहके बीच में,वन जानूं नहिं भेद। शुद्ध ब्रह्मात्म भासता, करूं राग किम खेद॥
समुद्र व्यापक रूप मम,चित्त नष्ट सब बात। जीव व्यपारी दैव वश,जगत नावहो पात॥
एक शांत कूटस्थ सुख,चैतन घन हूँ आप। आनन्द पूरण बोध मय,स्वयं ब्रह्म इम जाप॥
सत चेतन आनन्दमम, अजहूँ व्यापक रूप। सूक्ष्म वाणी से परे, सो मैं ब्रह्म स्वरूप॥

प्रश्न--बन्धु मोक्ष आदि जगत् की कल्पना ब्रह्मात्मा में कैसे हुई?

उत्तर—मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ और अंतःकरण व अविद्या आदि उपाधियां मेरे में कल्पित हैं इसलिये मैंने ब्रह्म विचार द्वारा माया आदि सर्व उपाधियों को बाध (मिथ्या) जानकर ब्रह्मात्मा को एक निश्चय किया है॥७

मुझ अद्वैत, निर्मल ब्रह्म चैतन्य में बन्ध, मोक्ष आदि प्रपंच तीनों कालों में नहीं, सद्गुरु के उपदेश रूप शास्त्र करके निर्मूल भ्रान्ति को मैंने नष्ट किया है। ब्रह्म दृष्टि से विक्षेप रूप जगत् केवल कल्पना रूप है, जैसे रज्जु में सर्प व आकाश में फूल तीनों कालों में होते नहीं तैसे मुझ चैतन्य में सृष्टि असत्य है ॥८॥

मैं अनेक जीवों में स्थित हुआ भी निर्जन बन के तुल्य मानता हूँ अर्थात् सर्व को अत्यंताभाव (शून्य) रूप जानता हूँ। अतः सदा असंग अद्वैत हूँ ॥९॥

सर्व व्यापक ब्रह्म समुद्र में प्रतिबिम्बों के तुल्य भासित हुई अहंकार आदि वासनाओं के वेग कर इधर उधर भ्रमता हुआ सर्व संसार प्रारब्ध के समाप्त हुये अभाव को प्राप्त होता है ॥१०॥

अद्वितीय निर्विकार, निष्क्रिय, एक रस चिदानन्द स्वरूप में स्वयं प्रकाश हूँ, और विश्व मेरे में कल्पना मात्र है, अतः मैं नित्य मुक्त स्वरूप हूँ ॥११॥

अस्ति, भांति, प्रिय (सच्चिदानन्द) स्वरूप अज व माया से अतीत मन, वाणी का अविषय मैं ब्रह्मात्मा हूँ, यह सर्व विद्वानोंका दृढ़ निश्चय होताहै॥१२

त्रिपु धामसु यद्भोग्यंभोक्ताभोगश्चयद्भवेत्। तेभ्योविलक्षणःसाक्षीचिन्मात्रोऽहंसदाशिवः १३
मय्येव स कलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। मयि सर्वंलयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥१४॥
निर्गुणोऽस्मिनिरीहोऽस्मिनिरंशोऽस्मिनिरीप्सितः।चिदात्माऽस्मिनिरंशोऽस्मिपरापरविवर्जितः
शुद्ध बोध स्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदा शिवः। निष्क्रियोऽस्म्य विकारोऽस्मि निर्गुणोनिराकृतः
निर्विकल्पोऽस्मिनित्योऽस्मिनिरालम्बोऽस्मिनिर्द्वयः। केवलाखंडवेद्योऽहंस्यानन्दोऽहंनिरंतरः
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत्। केवलं चित्सदानंद ब्रह्मैवाहं जनार्दनः ॥१८॥

जाग्रत स्वप्न सुपुप्ति में, त्रिपुटीं होतीं जोइ, सब पर साक्षी मुक्त हूँ शिव चेतन नित सोइ ॥
सब उपजत जग हमन से, स्थित हो मो माहिं, लय मेरे में होइ सब, अद्वै ब्रह्म कहाय ॥
रहित क्रिया आतम अफुर, निरालंब इछ हीन। आतम चेतन अंश बिन, परे उरेनहिं चीन॥
चेतन शुद्ध स्वरूप पुनि मैं अद्वै कल्यान। हौं नित अचल अकार नहिं,अदेह त्रय गुणहानि॥
भेद रहित है रूप सत,निराधार एक मान। चेतन रूप अखण्ड निज, सत आनंदी खान॥
सत चेतन हूँ अंत बिन,शुद्ध ब्रह्म हूँ सोइ। ज्ञानरूप आनन्द वपु, ब्रह्महि मुक्त सुजोइ ॥

प्रश्न—वेदों में ब्रह्मवेत्ता के अनुभव को जैसा लिखा है, वह कहिये।

उत्तर—जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति · तीनों अवस्थाओं में भोक्ता, भोग, भोग्य आदि सर्व त्रुपुटियां भासती हैं, तिन सर्व से विलक्षण मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् सर्व जगत् असज्जड़, दुःख रूप है और ब्रह्मात्मा सत्य चैतन्य आनन्दघन निर्विकार है ॥१३॥

अधिष्ठान रूप चैतन्यात्मा में कल्पित जगत् स्वप्न सृष्टि के तुल्य भासता है और अन्तिम मेरे में लय (एक) होता है, अतः ब्रह्मात्मा सर्व भेदों से अतीत अद्वैत निर्विकार है ॥१४॥

परमार्थ से मैं चैतन्य सदा अफुर और अहंकारादि सर्व वासनाओं से मुक्त सूक्ष्म और एक, दो की कल्पना से परे चिदानंद निर्विकल्प [शुद्ध] हूँ ॥१५॥

माया से रहित शुद्ध ज्ञान रस, सर्व क्रियाओं से अतीत, षट विकारों से रहित नाम, रूप से परे, सात्विक आदि गुणों से वर्जित अद्वैत मुक्त रूप ब्रह्मात्मा मैं हूँ ॥१६॥

सर्व संशय व भेद रहित, निराधार, अद्वैत स्वरूप नित्य मैं चिदानंदघन हूँ यह अन्तर दृष्टि विद्वानों की वेदों में प्रबलता से वर्णन की है ॥१७॥

त्रय काल अबाध [सत्य स्वरूप] चिदानन्द, नाश रहित, सर्व से उत्तम शुद्ध स्वरूप, सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं हूँ; यह सर्व विद्वानों का अनुभव है इस निष्ठायुक्त पुरुष को जीवन्मुक्त कहना चाहिये ॥१८॥

अशुभाशुभ संकल्पैःसं शांतोऽस्मि निरामयः। नष्टेष्टानष्ट कलनः संविन्मात्र परोऽस्महम्॥१९
अविद्या कार्य हीनोऽहमवाड्मनसगोचरः। आत्म चैतन्य रूपोऽहमहमानन्द चिद्धन २०॥
ज्योतिर्मयोऽस्म्यहंज्यायाज्ज्योतिपांज्योतिरस्म्यहम् नित्योहंनिरवद्योहंनिष्क्रियोऽस्मिनिरंजनः
निर्मलोनिर्विकल्पोहंनिराख्यातोऽस्मिनिश्चलः। निर्विकारोनित्यपूतोनिर्गुणोनिःस्पृहोऽस्म्यहम्
निरिंद्रियोनियंताहं निर्पेक्षोस्मि निष्कलः। पुरुप परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम्।२३
एकधाचितामानोऽहंद्वैताद्वैतविलक्षणः।शुद्धोस्मिशुक्रःशान्तोऽस्मिशाश्वतोऽस्मिशिवोऽस्म्यहम्

बुरे भले संकल्प बिन, व्यथा रहित हूँ शांत। नाहीं सुख दुख कल्पना, शुद्ध एक बहु कांत॥
मैं अतीत सब जगत ये, मन वाणी से दूर। आतम चेतन रूप मम, चिदानन्द भरपूर॥
ज्ञान स्वरूप प्रकाश मैं, ज्योती दिव्य प्रधान। नित्य अलक्षहि क्रिया बिन, माया परे पछान॥
भेद रहित माया नहीं, छिपा निश्चलहि ज्ञान। शांत स्वरूप पवित्र मम, निर्गुण इच्छा हान॥
परे इन्द्रियाँ प्रेरता, अफुर नहीं कुछ आश। ब्रह्मानन्द पूरण सदा, परम सनातन राश॥
चित योग्य इकरूप मम, द्वैता द्वैत विहीन। प्रकाश निर्मल शांत वपु इक रस शिवहि प्रवीन॥

प्रश्न—विद्वानों की अन्तरीय निश्चय को और सुनना चाहता हूँ।

उत्तर—शुभाशुभ वासनाओं से अतीत, परम शीतल स्वरूप, अध्यातम आदि सर्व तापों से मुक्त और इष्टानिष्ट कल्पना से रहित, मैं केवल चैतन्य घन हूँ॥१९॥

माया, अविद्या व तत्कार्य प्रपंच से विलक्षण, और मन, वाणी से अतीत, सर्व भेदों से शून्य, एक रस ब्रह्मात्मा चैतन्य स्वरूप मैं हूँ॥२०॥

केवल प्रकाशमय, सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतियों से उत्तम स्वयं प्रकाश रूप नाश से रहित, सर्व क्रियाओं से मैं अतीत हूँ और माया आदि उपाधियों से रहित निर्वाच्य स्वरूप हूँ॥२१॥

अंतःकरण आदि वासनाओं से मुक्त, परम शुद्ध, सर्व भेदों से परे, अति सूक्ष्म और सुमेरु आदि पर्वतों से अचल, निर्विकार, मुक्त, नित्य, पवित्र, सम्पूर्ण वासनाओं से वर्जित तथा सात्विक आदि तीनों गुणों से विलक्षण चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ॥२२॥

वाक् आदि सर्व इन्द्रियों का अविषय व सम्पूर्ण दृश्य का प्रेरक, सर्व वासनाओं से मुक्त और तीनों कालों से अतीत, परम अनादि, अनंत परम पुरुष, ब्रह्म चैतन्य मैं हूँ। यह दृष्टि विद्वानों के अन्दर सदा रहती है॥२३॥

अद्वितीय रूप से ध्यान करने योग्य, वास्तव से एक, दो की कल्पना से रहित, प्रकाश रस, अनादि, अनंत, निर्विकार केवल शान्त शुद्ध मैं हूँ॥२४॥

विद्वान् व्यवहार विभास (२४)।

स्वस्याविद्या बन्ध संबन्ध मोक्षात्सत्य। ज्ञानानन्द रूपात्म लब्धौ शास्त्र युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं चांतः सिद्धास्वानुभूतिः प्रमाणम् ॥१॥
नित्याभ्यासन शीलस्य स्वसंवेद्याहितद्भवेत्। तत्सूक्ष्मत्वाद् निर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥२
कश्चित्त्यक्तसमाचारःकश्चिच्छ्रोत्रियनायकः। कश्चिदुन्मत्त चरितःपत्राज्यां कश्चिदाश्रितः॥३

बन्ध अविद्या आपनी,गुरू शास्त्र उपदेश। प्राप्ति सत्य आनन्द चिद् निज अनुभवकर वेश ॥
नित अभ्यासी युक्तको, स्वसंवेद्य हैं ज्ञान। सूक्ष्म ब्रह्महि धारणा, निर्देशी ब्रह्म जान ॥
होता कोई कर्म बिन, को वेदान्त प्रकाश। कोई उन्मतसा फिरे, विज्ञ ब्रह्म अविनाश ॥

प्रश्न—ब्रह्म ज्ञानियों के वर्त्ताव कैसे होते हैं, वह स्पष्टता से कहिये।

उत्तर—ब्रह्म वेत्ताओं के व्यवहार अपनी२ प्रारब्ध के अनुसार विलक्षण२ होते हैं कुछ नियम नहीं, बाहर चेष्टाओं के द्वारा ब्रह्म ज्ञानियों की परीक्षा जो किया करते हैं वह वेदान्त सिद्धान्त को यथार्थ नहीं जानते, ब्रह्म ज्ञान को वेद आदि में भी स्वसंवेद्य वर्णन किया है ॥१॥

ब्रह्मात्मा को आच्छादित करने वाला अविद्या रूप बन्ध है, वह सद्गुरु के उपदेश द्वारा निवृत्त हो सकता है। चिदानन्द की प्राप्ति स्वानुभवकर गम्य है।

अज्ञान को निवृत्ति द्वारा ब्रह्मज्ञान को निष्ठा, स्वसंवेद्य वेदान्त में लिखी है। कारण यह है कि ब्रह्मात्मा व तिसका ज्ञान दोनों अतीन्द्रिय हैं और स्वयं प्रकाश होने से अन्तर ब्रह्मनिष्ठा को अन्य मनुष्य कैसे जान सकता है ॥२॥

अपने हृदय मध्य संशय,विपर्य्य की निवृत्ति को विद्वान् आपही जानता है, ब्रह्मवेत्ता के लक्षण स्वसंवेद्य हैं, वाह्य चेष्टा का व्यभिचार है अर्थात् पूर्वले संस्कारों के अनुसार कोई ब्रह्मवेत्ता सब कर्म्मों को त्यागकर वन में निवास करता है, कोई अनेक प्रकार उपदेश आदि में तत्पर (सावधान) होता है, कोई बावरों के तुल्य व्यवहार करता है, कोई सदाचार में लगा रहता है कोई सन्यास को धारणकर विचरता है, अनेक ज्ञानी इनसे विलक्षण चेष्टायें करते हैं, व्यवहारों का कुछ नियम नहीं, किन्तु अपनी २ प्रारब्ध के अनुसार भिन्न २ व्यवहार (यज्ञ, युद्ध आदि) विद्वान् करते हैं, वह वेद वेदान्त आदि शास्त्रों में वर्णित हैं, सब का सारार्थ यह है कि वाह्य व्यवहारों के द्वारा ब्रह्म ज्ञानियां की पहिचान करना अयुक्त (असम्भव) है ॥३॥

पातालमाविशतु यातु नभो विलंघ्यदिङ्‌ मण्डलंभ्रमतु पेपणमेव येन।
चिन्मात्रमेतदजरं ननु यातुनाशमाकाश कोश इव शांतमजं शिवं तत्‌ ।।४।।

। पातालहि आकाश चर,दशोदिशा उठधाय। स्वरूप चेतन विज्ञका,उदय अस्त नहिं पाय॥

प्रश्न—विद्वानों के व्यवहार अल्प और नियम से नहीं मानें तब ज्ञानी, अज्ञानी मनुष्यों में भेद ही क्या होगा, यह मेरा संशय दूर कीजिये।

उत्तर—व्यवहारों के नियम एक से होने पर ज्ञान की सफलता नहीं होती किन्तु ज्ञान एक सत्ता (मुख्य दृष्टि) और वर्त्ताव तीन सत्ता (प्राकृति दृष्टि) से होते हैं, सम सत्ता वाले पदार्थों की साधकता बाधकता होती है यह शास्त्रों का सिद्धान्त है।

कई विद्वान् पाताल में असुर, नाग व आकाश में सिद्ध, गन्धर्व, देवता और कोई राज्य ऋपि व ब्रह्मऋपि मृत्यु लोक में स्थित हुये वाह्यदृष्टि से विलक्षण २ व्यवहार करते हुये वास्तव से सदा निर्लेप रहते हैं, अर्थात् ऊँच नीच चेष्टाओं के होने से ब्रह्मरूप विद्वान् को कुछ लाभ व हानि नहीं होती।

जो यह कहते हैं कि मुमुक्षुदशा में किये वैराग्य, अभ्यास आदि साधनों के स्वभाव भूत हुये विद्वानों की विशेप प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये यह कथन अयुक्त है, कारण यह है कि श्रीराम जी में वैराग्य, अभ्यास आदि साधन अति प्रबल हुये थे, उन्होंने ब्रह्मज्ञान के पश्चात् राग व युद्ध और अन्तिम राज्य पालन तथा यज्ञ आदि अनेक व्यवहार किये और युद्ध आदि क्रिया को त्यागकर स्थित हुए अर्जुन को श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने ब्रह्मज्ञान के उपदेश द्वारा युद्ध आदि में प्रवृत्ति किया, यदि ज्ञान का फल सर्वथा निवृत्ति होता तब वह ऐसा क्यों करते और राजाओं व ऋपियों के ज्ञान से पीछे विलक्षण २ व्यवहार होते शास्त्रों में लिखे हैं, तो अल्प साधनों वाले मनुष्यों की चेष्टायें एकसी व अल्प कैसे हो सकती हैं। यदि राम, कृष्ण आदि को ज्ञानी नहीं माने तो शास्त्रों के कथन से विरोध होता है, जैसे राम आदि की चेष्टायें लीलामात्र हैं तैसे वेदान्त में सर्व विद्वानों के व्यवहार विलास लोली मात्र लिखे हैं, उनके निश्चय में नहीं किन्तु सदा असंग रहते हैं। व्यवहार दशा में भेद है परमार्थ से नहीं। अर्थात् निवृत्ति प्रधान को दृष्ट सुख व लोक संग्रह प्राप्त होता है, विशेप प्रवृत्तिवाले विद्वानों को उत्तमता व दृष्ट सुख नहीं होते हैं ।।४।।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ॥५
विपयाभिमुखं दृष्ट्वा विद्वांसमपि विस्मृतिः। विक्षेपयति धोदोषैर्योपा जारमिव प्रियम्॥६
अन्तः सर्वं परित्यागी नित्यमंतर नेपणः। कुर्वन्नपि बहिः कार्यं सममेवावतिष्ठते ॥७
समग्र सुख भोगात्मा सर्वाशास्विवसंस्थितः। करोत्यखिल कर्माणि त्यक्त कर्तृत्व विभ्रमः॥

कर्मशुभाशुभ किये जो,हों अवश्य तिन भोग। कोटि कल्प लग नहीं क्षय,भोग.दुःख सुख होग
इष्ट अनिष्टहि लाभ जब,विद्व भूल उर जान। बुद्धि होइ विक्षेप युत,ज्ञानी जानहि प्रधान ॥
अन्तर त्यागी जानिये,आत्म दृष्टि में जाग।करे दृत सब बाह्यमन,मध्य हृदय तिस त्याग॥
लखु आतम सब भोग को,विपयरूप सम मीत।बुद्धि अहं तज विज्ञवर,चेष्टा करते नीत॥

प्रश्न–क्या प्रारब्ध ब्रह्म के अभ्यास से भी बलवान है जो अन्तर मुख (जीवन्मुक्तों) को सुख, दुःख आदि भोग्य देती है।

उत्तर–तीव्रतर प्रारब्ध का फल विद्वान् बल्कि सर्वज्ञों को भी भोगना पड़ता है, अर्थात् अपना भोग दिये बिना बलवान् प्रारब्ध कोटि कल्पों तक भी नाश नहीं होती ॥५॥

इष्ट, अनिष्ट पदार्थों और भोगों के सन्मुख हुये विद्वान् भी स्वरूप को भूल करके अनेक प्रकार की चेष्टायें करते हैं, कारण यह है कि तीव्रतर प्रारब्ध असाध्य है, दूसरे बुद्धि व इन्द्रियों का अपने २ विषयों से अनादि सम्बन्ध है, इसलिये स्व २ विषयों के संमुख हुये बुद्धि, इन्द्रिय अपने २ विषय को ग्रहण करते हैं परन्तु उन से ज्ञानी पुनरावृत्ति (जन्म, मृत्यु) को प्राप्त नहीं होता ॥६॥

विद्वान् सर्व व्यवहारों को करता हुआ भी अन्तर (निश्चय) से ब्रह्मात्मा को नित्य अकर्त्ता जानता है, अर्थात् प्राकृत दृष्टि से विद्वान् यथा प्रारब्ध ऊंच नीच सब चेष्टाओं को करता हुआ परमार्थ (ज्ञान) दृष्टि से सब प्रपंच का स्वप्न सृष्टि के समान अत्यन्ताभाव जानता है ॥७॥

सम्पूर्ण भोग पदार्थों के बाध निश्चय से बाह्य यज्ञ, युद्ध व भिक्षावृत्ति आदि व्यवहारों को करता और सुख, दुःख को भोगता विद्वान् विपर्य्य से रहित हुआ सदा मुक्त रूप है ॥८॥

सर्वं सर्वं प्रकारेण गृह्णाति च जहाति च। अनुपादेय सर्वार्थो बालवञ्च विचेष्टते ॥९
बहिः प्रकृत सर्वार्थोऽप्यन्तः पुनरनीहया। न सतां योजयत्यर्थो न फलान्यनुधावति॥१०
भावेष्व भावघन भावनया महात्मा निर्मुक्त सकल नमंवर वस्थितेषु।
चित्तं प्रतिस्व मुदितो विततेक रूपी ज्ञस्तिष्ठति स्वपिति जीवति नित्य तृप्तः॥११
रूपालोक मनस्कारान्कुर्वन्नपि न किंचन। ज्ञः करोत्यनुपादेयान्न ज्ञस्य वहि कर्तृता ॥१२

ग्रहण मुंचकर सभीकुछ,आतम अन्तरत्याग।अहंरहित हो बालवत,स्वरूप ज्ञानी जाग ॥
दृष्टि बाह्यकर कर्मसब,अन्तर दृष्टि विराग।बुद्धि सत्य नहि विश्वगत,हैआतम अनुराग॥
आतम बिन नहि सत्य कुछ,अहं भेद सब जाय।प्रारब्धहि व्यवहार सब,आत्मानन्दस्वभाय
बाहिरइन्द्रियाँत्रिपुटिमन,ज्ञानीकरव्यवहार। ग्रहणबुद्धि नहिध्येयउर, विज्ञक्रियासबधार॥

प्रश्न--प्रारब्ध कर्मों के भोगने में यदि ज्ञानी, अज्ञानी दोनों समान हैं तो ब्रह्म ज्ञान में अधिकता क्या हुई।

उत्तर--तीव्रतर प्रारब्ध के अनुसार इष्ट, अनिष्ट आदि के प्राप्त होने पर विद्वान् ग्रहण, त्याग आदि सब व्यवहारों को यथोचित करता है परन्तु ज्ञान दृष्टि से स्वप्न के तुल्य सम्पूर्ण जगत् का अभाव जान और अहं (अभिमान) आदि से रहित हुआ विद्वान् सब क्रियाओं को यथा प्रारब्ध करता है अतः बालकों के समान क्रीड़ा करता हुआ अद्वैत, शुद्ध स्वरूप में स्थित होता है ॥९॥

विद्वान् बाह्य दृष्टि से सब चेष्टाओं को करता भी अन्तर (आत्म) दृष्टि से निष्क्रिय है अर्थात् महात्माओं को सुख, दुःख व इष्टादि पदार्थों में मूर्ख की नाईं आशक्ति नहीं होती है ॥१०॥

सब जगत् में सत्य बुद्धि से रहित ज्ञानी (महात्मा) सर्वत्र मुक्त दृष्टि, यानी सुषुप्ति के समान् स्थित हुआ संतोष पूर्वक जीवता है, अर्थात् स्वरूप निश्चय के प्रभाव से सर्व व्यवहारों में तृप्त रहता है ॥११॥

ज्ञानी मन, देह इन्द्रिय से सब व्यवहारों को करता भी वास्तव दृष्टि से कुछ नहीं करता, यानी विद्वानों को बाह्य क्रियाओं में ग्रहण बुद्धि (आशक्ति) नहीं होती किन्तु सब व्यवहारों से असंग (मुक्त) रहता है ॥१२॥

अन्तर्व्योमामलो वाह्ये सम्यगाचार चंचुरः। हर्षामर्ष विकारेषु काष्टलोष्ट समास्थितिः१३

अन्तर दृष्टी तुल्य नभ,अलिप्त वाहिर और। आश्रम वरणहि कर्मकर,सम दृष्टि सब ठौर

प्रश्न–जब व्यवहार में कुछ भेद नहीं तो ज्ञान में विशेपता क्या है ?

उत्तर–तीव्रतर प्रारब्ध के अनुसार अज्ञानियों के सदृश विद्वानों में भी सुख, दुख आदि वृतियां अवश्य होती हैं, परन्तु अन्तर निश्चय से ज्ञानी सदा मुक्त है, इस ज्ञान के प्रभाव से विद्वान् स्व २ वर्णाश्रम के अनुसार सब चेष्टाओं को करता हुआ स्वरूप को निर्विकार जानता है।

अनेक यह कहते हैं कि विद्वानों में राग, द्वेष व इच्छा, भय और चिंता, शोक कदाचित नहीं होते, इस कथन की व्यवस्था यह है कि विद्वान् ज्ञान दृष्टि से सर्व जगत् का अत्यंताभाव जानता है तब राग आदि तुच्छ (असत्य) वृतियां स्वरूप में बाधा नहीं करतीं।

तीव्रतर प्रारब्ध के अनुसार राग, भय आदि वृतियां अवश्य होती हैं यह अर्थ प्रथम प्रमाणों से सिद्ध कर आये हैं। अर्थात् बलवान् प्रारब्ध वश विद्वानों में भी पहिले स्वरूप की विस्मृति, फिर भेदबुद्धि पश्चात् इष्ट, अनिष्ट का ज्ञान, तिस के अनंतर संकल्प व इच्छादि होकर प्रिय में प्रवृति व अप्रिय से निवृति होना संभव है, यानी तीव्रतर प्रारब्ध पहिले कहे क्रम से सब वृत्तियों को उत्पन्न करके पीछे भोग देती है, इसलिये जहां २ कुछ प्रवृत्ति व निवृत्ति दीख पड़ती हैं वहां २ पहिली वृत्तियां अवश्य माननीं पड़ेंगी, सब वृतियों का अभाव मानें तो विद्वानों की चेष्टा बन्द होजावेगी २ वृत्तियों के सर्वथा अभाव हुये देह आदि कैसे स्थित रह सकते हैं ३ सब वृत्तियों के नहीं रहने पर बाधतानुवृत्ति नहीं बन सकेगी ४ वृत्तियों के अभाव हुये वासनाक्षय आदि का अभ्यास कैसे कहना होगा। ५ सर्वथा वृतियों का अभाव हुये जीवन्मुक्ति कैसे सिद्ध होगी ६ ध्येय का त्याग व नेय वासना का रहना विदानों में सम्भवहै७ ज्ञान कर मन का स्वरूप नाश लिखाहै अरूप नहीं,शास्त्र के नियम से विरुद्ध होवेगा ८ राग आदि वृत्तियों का अभाव परसंवेद्य है तो स्वसंवेद्य ज्ञान का सिद्धान्त भंग होगा ९ संघात (तीनों देहों) के होते, इनके धर्मों का सर्वथा अभाव नहीं बनता। १० ज्ञान का प्रारब्ध से विरोध नहीं, अतः वृत्तियों का अभाव अयुक्त है ११ वृत्तियों के अभाव हुये दृष्टि सृष्टि रूप मुख्य सिद्धान्त का लोप सिद्ध होगा ॥१३॥

मरणं जीवितं तस्मान्न दुःखं न सुखं यतः। नास्त्येव तच्चिदाकाशः किलेत्थमभिजृम्भते॥११

जन्म मृत्यु अरु दुःखसुख, चेतनधर्म हि नाहि। चिदाकाश है सर्वगत, हानि लाभ फिर काहि॥

प्रश्न--अज्ञानियों के समान सब वृत्तियोंको विद्वानों में कैसे मान सकते हैं।

उत्तर--जन्म, मृत्यु व सुख, दुखादि वृत्तियां होते हुये भी पूर्ण चैतन्य स्वरूप में इनका सर्वथा अभाव है, बाहर देह यात्रा में वृत्तियाँ नहीं मानें तो तीव्रतर प्रारब्ध क्या मिट जायगी १३ जीव २ प्रति सृष्टि कहने वाले सिद्धान्त का लोप होगा १४ सब वृत्तियां वश में हो जायें तो सब विद्वानों की क्रिया नहीं होनी चाहिये १५ ज्ञानियों की जड़ दशा माने तो हठ समाधि अथवा सुषुप्ति में ज्ञान निष्ठा की अतिव्याप्ति होगी १६ सब वृत्तियों का लोप माने तो राज्य में स्थिति विद्वानों में अव्याप्ति दोष प्राप्त होवेगा। १७ तीव्रतर प्रारब्ध के अमिट होने से असम्भव दोष है १८ सर्व वृत्तियों के अभाव होने पर वेदान्त संप्रदाय का उच्छेद हो जावेगा १९ ज्ञान प्राप्ति का क्रम लिखने वाले शास्त्रों से विरोध होगा २० वृत्तियों के द्वारा विचार किये विना शास्त्र व संहिताओं (पुस्तकों) की व्याख्या रचना करने वाले अज्ञानी सिद्ध होंगे २१ वेद शास्त्र में विद्वानों के यज्ञ, युद्ध आदि अनेक व्यवहार होते लिखे हैं, वह सब मिथ्या होंगे २२ उपदेशक (सद्गुरु) में देह यात्रा के अर्थ इच्छादि वृत्तियों के होने पर जिज्ञासुओं की अश्रद्धा होने से परमार्थ सिद्ध कैसे होगा २३ वृत्तियों का सद्भाव देखकर अपनी ज्ञान निष्ठा में संशय आदि प्राप्त होंगे और संशय ही अनर्थ कारक हैं २४ वर्तमान के विद्वान् निष्क्रिय नहीं हो सकते यह स्पष्ट विरोध है २५ इत्यादि अनेक दोष पूर्व पक्ष में विद्यमान हैं अतः निष्पक्ष व निर्दोष अर्थ को सत्य मानना श्रेयस्कर है, अन्यथा विशेष अवनति होती है।

प्रथम सर्व कथन से यह स्पष्ट है कि विद्वान् तीव्रतर प्रारब्ध अनुसार देह यात्रा अर्थ सर्व व्यवहार करता भी सदा असंग (मुक्त) है और अंतः करण के धर्मों में ब्रह्मरूप विद्वानों का सम्बन्ध मानना सर्वथा असम्भव तथा परमार्थ निश्चय का नाशक है ॥१४॥

कदाचित्कं रागलेशं चिकित्सातुमशक्नुवन । योत्रज्ञानिष्ठा संद्वेष्टि कदास्या तत्त्व निश्चयः१५
कामेन विजितो ब्रह्मा कामेन विजितो हरिः । कामेन विजितः शम्भुः शक्रकामेन निर्जितः॥१६
अवश्यं भावि भावानां प्रतिकारो भवेद्यदि । तदा दुःखैर्न लिप्पेरन्नल राम युधिष्ठिराः ॥१७
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते ज्ञान वानपि । प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहःकिं करिष्यति॥१८

राग द्वेष हों कदाचित, सहन करे नहि चीन । ब्रह्म ज्ञान की हानि अति, तत्त्व ज्ञान हो हीन॥
ब्रह्माशंकर इन्द्र हरि, मोहे इच्छा भोग । और विज्ञ की कथाकिम्, धर्म चित्त अनुयोग ॥
अवश्य भावी उलट कर,होइ जभी प्रतिकार । नलहि युधिष्ठिर रामजी,देत कष्ट निज टार॥
करते अपन प्रकृति वश, सभी चेष्टा जोइ । अज्ञ विज्ञ प्रारब्ध हो, निग्रह किस विधि होइ॥

प्रश्न—विद्वानों में इच्छा आदि व्यवहार नहीं मानने से और हानि क्या है ।

उत्तर—पहिले तो ज्ञान में ही संशय उत्पन्न होते हैं, द्वितीय वेद, वेदान्त के सिद्धान्त से विरोध होकर अप्रमाणता प्राप्त होती है, तीव्रतर प्रारब्ध वश किसी काल में होने वाले राग, द्वेप व इच्छा, भय आदि आभास मात्र मानसी धर्मों के प्रवृत्त हुये जो अपनी ज्ञान निष्ठा में त्रुटि मानता है, उस भ्रान्त पुरुष को तत्त्व ज्ञान की दृढ़ता कदाचित नहीं होती, किन्तु वह संशयात्मा पुरुष दोनों लोकों के सुख व श्रेय से भ्रष्ट होता है, भगवद्गीता में यह लिखा है ॥१५॥

तीव्रतर प्रारब्ध के वश जब हरि, हर ब्रह्मा व इन्द्र आदि काम (राग) के आधीन होकर अनेक प्रकार के ऊंच, नीच व्यवहार करते भये हैं तो तुच्छ मनुष्यों की कहनी क्या है, अर्थात् प्रबल प्रारब्ध अमिट है वह सर्वज्ञों को भी भोगनी पड़ती है ॥१६॥

अवश्य भावी सुख, दुःख आदि की निवृत्ति का कोई उपाय होता तो महाराजा नल व धर्मध्वज युधिष्ठिर और श्रीराम जी बन आदि में विशेष आपत्तियों करके व्याकुल न होते, जो यह कहते हैं कि उन्होंने उपाय ठीक न किये थे यह कथन अयोग्य और शास्त्रों के वाक्यों को अन्यथा मानकर है, अतः स्पष्ट हुआ कि तीव्रतर प्रारब्ध को कोई भी टाल नहीं सकता ॥१७॥

अपने २ प्रारब्ध (बलवान संस्कारों) के अनुसार ज्ञानी, अज्ञानी सब के सुख, दुःख आदि व्यवहार समान होते हैं, श्रीकृष्णचंद्र वर्णन करते हैं, कि ऐसे असाध्य व्यवहारों का निग्रह नहीं हो सकता, किन्तु वह अमिट हैं, अर्थात् प्रबल प्रकृति सर्व को क्रिया में अवश्य जोड़ती है ॥१८॥

व्यवहारे यथैवाज्ञस्तथैवाखिल पण्डिताः। वासना मात्र भेदोत्र कारणं वन्ध मोक्षदम्॥१९
सुखेपु सुखिता नित्यं दुःखिता दुःख वृत्तिपु। महात्मानोहि दृश्यते दृश्य एवाप्रबुद्धवत्॥२०

अज्ञ विज्ञ व्यवहार सम, ध्येन वासना भेद। वन्ध मोक्ष का हेतु यह, कहैं भावना वेद॥
होवे सुख प्रिय विपय में, अनिष्ट दुख आवेप। सदृशज्ञानी अज्ञ हों, निश्चय भेद अशेप॥

प्रश्न—ज्ञानी अज्ञानी के वर्ताव में कुछ विलक्षणता नहीं होवे तो ब्रह्मज्ञान की सार्थकता कैसे होगी।

उत्तर—विद्वानों, अज्ञानियां के व्यवहार यथा प्रारब्ध समान होते हैं, परन्तु देह आदि में अभिमान व जगत् में सत्यता और आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता जानना यह तीन विपर्य्य ब्रह्मवेत्ता में नहीं रहते, इसलिये ज्ञानी मुक्त स्वरूप है, और तीनों विपर्य्यों सहित अज्ञानी संसार चक्र में निरंतर भ्रमता हुआ महान् २ कष्टों को सहन करता है, यह दोनों में भारी विलक्षणता है।

ब्रह्म ज्ञान करके देह, अन्तःकरण के नाम, रूप और व्यवहारों का व्यतिक्रम (बदलना) नहीं होता जैसे पार्स मणि के स्पर्श होने पर तांवे के बड़े, छोटे वर्त्तन स्वर्णरूप होते हैं, परन्तु उन के नाम, रूप और व्यवहारों में विलक्षणता नहीं होती तैसे ही प्रारब्ध के अनुसार सुख, दुख व हानि, लाभ आदि ज्ञानी व अज्ञानी को तुल्य होते हैं॥१९॥

इष्ट पदार्थों की प्राप्ति में सुखी और अनिष्ट (दुखदाई) पदार्थों में दुःखी विद्वान् भी अज्ञानियों के तुल्य होते हैं, व्यवहार में ज्ञानी, अज्ञानी का भेद नहीं और अन्तर निश्चय व फलों का भेद विशेप है, अर्थात् अज्ञानी विपर्य्य दृष्टिकर बन्ध होता है और ब्रह्मवेत्ता मुक्त स्वरूप है। यह वात अवश्य है कि जिज्ञासुओं को दृढ़ प्रयत्न करके साधनों का संग्रह करना कल्याणप्रद है।

कहीं २ ऐसा होता है कि तीव्रतर प्रारब्ध के वश ब्रह्म ज्ञान के पश्चात राग आदि प्रगट हो जाते हैं जैसे श्रीराम जी के हुये, अर्थात् ज्ञान के पीछे तीनों गुणों का प्रवर्तन होना सम्भव है। शुक जी के वन गमन काल में ज्ञान के समुद्र श्रीवेदव्यास का विलाप करना ऐसे व्यवहार को देख सुनकर अविचारी मनुष्य विद्वानों में अज्ञान का कलंक लगाते हैं, यह वात महा शोचनीय है। पहिले सर्व कथन का भाव यह है कि ठीक २ प्रयत्न करके ज्ञानी, अज्ञानी सभी कोमल, तीव्र प्रारब्ध को जीत सकते हैं और तीव्रतर भोगकर नष्ट होती है। ज्ञान का फल अज्ञान की निवृत्ति और अन्तिम निर्वाणपद की प्राप्ति है, जहां २ ब्रह्मवेत्ताओं में सदगुणों का प्रवर्तन लिखा है वह जिज्ञासुओं के हित के लिये है, विद्वानों की स्तुति, निन्दा से शास्त्रों का कुछ प्रयोजन नहीं॥२०

सम्यग्बोध वतामेषा वासनैव न वासना। ज्ञानाग्निदग्धा दग्धस्यकैव बीजस्य बीजता॥२१
सर्व प्रकृत कार्यस्थो मध्यस्थः सर्वदृष्टिपु। ध्येयंतं वासना त्यागमवलंब्य व्यवस्थितः॥२२

विज्ञ वासना नहीं सत, पावक ज्ञान जराय। भुना बीज उपजे नहीं, ज्ञानी जन्म विलाय॥
करते पतित प्रवाह सब, हो सम दृष्टि अनूप। ध्येय वासना त्याग कर, लखु ब्रह्मातम रूप॥

प्रश्न—ब्रह्मवेत्ता में जब वासना रहती हैं तो पुनः उन कर जन्म होगा।

उत्तर—विद्वानों की वासनायें आभास मात्र होने से जन्म का कारण नहीं होतीं, जैसे भुना हुआ बीज उत्पन्न नहीं होता, तैसे ज्ञानी की नेय रूप वासनायें प्रतीति मात्र हैं,इसलिये ज्ञानी को यज्ञ,युद्ध आदि व्यवहार बन्ध का हेतु नहीं होते,केवल शरीर यात्रा को सिद्ध करतेहैं। वह प्रारब्धसेअवश्यहोतेहैं।

भ्रान्तिकर प्रतीत हुये सर्प को निवृत्ति केवल प्रकाश से होती है, तैसे ही भ्रम कर भासित हुये जगत् बन्ध का ब्रह्म ज्ञान कर अभाव होता है।

निद्राकर कल्पित पदार्थ स्वप्न काल में ज्ञानी, अज्ञानी को सुख, दुःख समान देते हैं और जागने पर उन का सर्वथा अभाव होता है। तैसे संसार बन्ध भ्रम सिद्ध है, ज्ञान से इसकी सत्यता नहीं रहती॥२१॥

अपनो २ प्रकृति के अनुसार ज्ञानी, अज्ञानी सब के व्यवहार होते हैं परन्तु ज्ञान दृष्टि से संसार बन्ध का अत्यन्ताभाव निश्चय होता है।

ज्ञानी,अज्ञानी में यह भेद अवश्य है कि विद्वान् जगत् को कल्पित और स्वरूप को शुद्ध अद्वैत जानता है और अज्ञानी जगत् को सत्य व आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता जानता हुआ संसार चक्र में भ्रमता रहता है।

जैसे कोयलों को साबुन आदि से धोकर उज्वल करना असम्भव है तैसे आत्म ज्ञान के बिना और कोटि उपायों से संसार नाश नहीं होता, किन्तु ज्ञानाग्नि कर सहजमें ही जगत् का बाध होता है। जिस प्रकार डालियोंके तोड़ने पर वृक्ष अधिक फैलता है तैसे कर्म आदि कर संसार रूप पेड़ विशेष बढ़ता है और ब्रह्मास्त्रकर मूल से उखाड़ा हुआ वृक्ष सहज में सूख जाता है तैसे ब्रह्म ज्ञान कर अज्ञान रूप मूल संयुक्त उखाड़ा हुआ संसार तरु फिर हरा नहीं होता। यह बात अवश्य है कि जिस विद्वान् के निवृत्ति, निष्कामता होती है वह पूज्यनीय, प्रशंसनीय हुआ अधिकारियों को भी तार सकता है और बाह्यमुख (प्रवृत्ति शील) ज्ञानी विक्षेप (दुःख) पाता हुआ मन्द प्रारब्ध वाला शास्त्रों में वर्णन किया है॥२२॥

संविदो नास्तिसंवेद्यं स्वयं संवेद्यतामिता। चित्त्वादतो विशालात्त द्वित्वैक कत्वेकवास्थिते॥२३
ब्रह्म विदाप्नोति परम, तत्पूर्णानन्दैक बोधस्तद् ब्रह्मैवाहमस्मि ॥२४

नाहीं चेतन वेद्य वपु, स्वसंवेद लखु नीत। ब्रह्म अनूपहि वही तू, एक द्वैत नहिं मीत॥
होइ ब्रह्मवेत्ता अमर, परमानन्दहि भान। मैं हूँ सोई ब्रह्म इक, आत्म रूप पहिचान॥

प्रश्न—जब व्यवहारों से परीक्षा नहीं हो सकती तब विद्वान् को कैसे जान सकें?

उत्तर--ब्रह्मात्मा का ज्ञान स्वसंवेद्य है, बाह्य चेष्टाओं से विद्वान् की परीक्षा असम्भव है किन्तु जिज्ञासुओं के भाग्य वश विद्वानों (सद्गुरु) की संगति व उन में श्रद्धा आदि होते हैं।

संशय, विपर्य्य की निवृत्ति रूप यथार्थ निश्चय स्वानुभव कर गम्य है मन वाणी कर अन्य की निष्ठा का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता और राग, द्वेप आदि की अल्पता से निष्काम महात्मा की संभावना होती है परन्तु राज्य में स्थित हुये विद्वानों को यज्ञ, युद्ध आदि सर्व व्यवहार करने पड़ते हैं॥२३॥

परमानन्द शुद्ध चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ, यह निश्चय विद्वानों का है, अतः अनेक श्रुतियां ब्रह्मवेत्ता को ब्रह्मस्वरूप वर्णन करती हैं, उनमें राग द्वेपादि के होने व नहीं होने की कल्पना करना अयोग्य है।राग,द्वेप आदि को अपना धर्म मानकर प्रवृत हुए अज्ञानियों में राग आदि मानने उचित हैं। कई यह कहते हैं कि विद्वानों में राग द्वेपादि का अभाव न जानना हानिकारक है उनके तोष करनेके लिये नीचे निश्चय आदिका भेद व हानिको दिखाते हैं जिसकर विवाद नहीं रहेगा वह यह है कि तीव्रतर प्रारब्ध से ब्रह्मवेत्ता में दूसरों को आभास मात्र राग, द्वेपादि प्रतीत होते देखकर उनको अज्ञानी समझकर मुमुक्षु ज्ञान प्राप्ति से वंचित रहेंगे यह बहुत त्रुटि है हेतु यह है कि जब तलक देह आदि विद्यमान हैं तब तक तीन गुणों का सर्वथा अभाव नहीं हो किन्तु सब मुनियों में सत्व प्रधान सनतकुमार ने प्रबल संस्कारों वश जय, विजय पर अति क्रोध करके उनको अधोगति का शाप दिया था और सत्त्व प्रधान श्री विष्णु जी भी असुरों से विशेप युद्ध आदि करते ब्रह्मज्ञान व सर्वज्ञता के होने पर असंग हुये (मुक्त) स्वरूप हैं। यह स्पष्ट हुआ कि बाह्य देह के व्यवहारों से ब्रह्मवेत्ता की परीक्षा असम्भव है इसलिये अधिकारी का जिस विद्वान् से संशय दूर होकर परमार्थ लाभ हो उस के लिये वही श्रेष्ठ है॥२४॥

पुरुषो न शरीरादि न च चित्तादि किंचन। पुरुषश्चेतनं नाम न स नश्यति कर्हिचित् ॥२५
चित्त वृत्ते रतीतो यश्चित्त वृत्त्यवभासकः। चैतन्य मात्र संसिद्धः स्वात्म रामः सुखासनः॥२६

ब्रह्म पुरुष देहादि नहि, चित्त बुद्धि भी नाहि। केवल चेतन रूप उस, होइ हानि फिर काहि॥
राग द्वेष सब वृत्ति का, ब्रह्म प्रकाशक रूप। अद्वै चेतन सिद्ध यह, आत्मानन्द स्वरूप॥

प्रश्न–ज्ञानी की शारीरिक व्यवहारों से पहिचान नहीं होती तो और क्या लक्षण हैं कि जिन कर विद्वान् जानने में आवें।

उत्तर–ब्रह्म वेत्ता शरीर अन्तःकरण नहीं किन्तु इनसे अतीत चैतन्य घन है, तीनों शरीरों के धर्मों से विद्वान् का कुछ सम्बन्ध नहीं अतः अनेक वेद वाक्य उनको ब्रह्म स्वरूप कहते हैं ॥२५॥

राग, द्वेष आदि सब वृत्तियों से अतीत, उनका साक्षी हुआ ज्ञानी परमानन्द स्वरूप में स्थित होता है। किसी का यह भाव है कि जीवन्मुक्तों में सुख, दुःख और राग, द्वेष आदि कभी नहीं रहने चाहिये इस अर्थ के निर्णय के अर्थ चार प्रकार की दशा लिखते हैं उससे संशय नहीं रहेगा। वह यह है कि अपने को ज्ञानी कहाना व विद्वानों में राग, द्वेष आदि का सर्वथा अभाव बताना और निज अंतःकरण में सब वासनाओं के होते भी अपने को वासना रहित कृतार्थ जानना यह ज्ञान बन्ध के लक्षण हैं १ ब्रह्मवेत्ता में वासनाओं का अभाव जान कर देह निर्वाहक वासनाओं के होते अपने को अज्ञानी मान लेना यह दशा भी शोचनीय है २ वृत्तियों के होते इनका साक्षी स्वात्मा को जानकर असंग निश्चय करना कल्याण प्रद है ३ वैराग्य, अभ्यास की प्रबलता से सात्विक गुणों संयुक्त हुये प्रबल प्रारब्ध से देह निर्वाहक मानसी वृत्तियों के प्रवृत्त होने पर सब को असत्य जान नित्य शुद्ध अद्वैत ब्रह्म निश्चय रखना यह निष्ठा उत्तम विद्वानों (जीवन्मुक्तों) की होती है ४

वेद, वेदान्त का प्रबल सिद्धान्त यह है कि यथा सम्भव अनात्म रूप वासनाओं से बचते हुये बलवान संस्कारों के वश व्यवहार के होने पर सब वृत्तियों से अतीत प्रकाशक व शुद्ध ब्रह्मात्मा को जान करके इन से सम्बन्ध न मानना यह श्रेष्ठ धारणा उत्तम जीवन्मुक्तों की है ॥२६॥

तत्त्व ज्ञान अभ्यास विभास (२५)

तच्चिंतनं तत्कथनमान्योन्यं तत्प्रबोधनम् । एतदेक परत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥१
ब्रह्माकार मनोवृत्तिःप्रवाहोऽहं कृतिविना संप्रज्ञात समाधिःस्याद्ध्यानाभ्यास प्रकर्षजः॥२
विक्षिप्यते कदाचिद्धी कर्मणा भोग दायिना। पुनःसमाहितासास्यात्तदैवाभ्यास पाटवात् ॥३
लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः । स कषायं विजानीयात्समप्राप्त न चालयेत् ॥४

करताचिंतन बोध निज, ब्रह्म परस्पर कत्थ । ऐसी तत्पर एकता, ब्रह्माभ्यासहि मत्थ ॥
ब्रह्म चिंतनहिं नित्य प्रति, करो अहं मम दूर। अंतरमुखी समाधि लखु, अभ्यासहि भरपूर॥
कर्मजनित विक्षेपवृति, करे समाहित नीत। ध्यान ब्रह्मकर अति घनो,अभ्यासहि पटु मीत॥
निद्रा तंद्रा जीत कर, सब विक्षेप मिटाय। रजो चित्त को जान ले, नहिं अभ्यास चलाय॥

प्रश्न—जिस अभ्यास के करने पर तत्त्व ज्ञान की दृढ़ता हो,वह कहिये ।

उत्तर—एकान्त स्थान में स्थित होकर निरंतर ब्रह्मात्मा का श्रेष्ट युक्तियों के द्वारा ऐक्य मनन, व उसी अर्थ का अपने हृदय में नित्य चिंतन और अपने सदृश सज्जनों से मिल करके परस्पर तत्त्व पदार्थका कथन, श्रवण तथा शरण को प्राप्त हुए अधिकारियों को उसी का निष्कामता पूर्वक उपदेश करना ऐसी ज्ञान की धारणा करने पर ब्रह्म ज्ञान की दृढ़ता होती है अर्थात् इस प्रकार का ब्रह्माभ्यास होना श्रेयस्कर होता है ॥१॥

वृत्तिव्याप्ती द्वारा अद्वैत ब्रह्माकार सजाति वृत्तियाँ रूप निदिध्यासन करने से परिच्छिन्न अहंकार की निवृत्ति रूप सविकल्प समाधि है यह अभ्यास की प्रबलता से प्राप्त होती है ॥२॥

सुख, दुःख आदि भोगों को देने वाले प्रबल प्रारब्ध के वश हुई बुद्धि जब चंचलता को प्राप्त हो तभी उसको ध्यान में लगाकर सावधान होना अर्थात् वैराग्य पूर्वक इष्ट पदार्थों के चिंतन को त्याग करके ब्रह्मात्मा के अभ्यास में दृढ़ता रखना यह तीव्र अभ्यास कैवल्य पद को प्राप्त करता है ॥३॥

तन्द्रा, निन्द्रा में विलीन हुये चित्त को यथायोग्य उपायों से सचेत कर के अभ्यास में लगाना, व कुण्ठित हुई बुद्धि को सावधान करके ब्रह्म चिंतन करना और अन्तर्मुख हुई वृत्तियों को चलायमान न होने देना इस प्रकार अभ्यास की दृढ़ता से सर्व संशय, विपर्य्य नष्ट होते हैं । पहिले सब कथन का भाव यह है कि सब अनात्म पदार्थों से उदासीन होकर ब्रह्मात्मा का अनन्य अभ्यास करने पर अद्वैत निश्चय वाला ज्ञानी कृतार्थ होता है ॥४॥

आत्मानात्मकारं स्वभावतोऽवस्थितं सदाचित्तं।
आत्मैकाकारतया तिरस्कृतानात्म दृष्टि विदधीत ॥५
सर्गादादेव नोत्पन्नं दृश्यं नास्त्येव तत्सदा। इदं जगदहं चेति बोधाभ्यासं विदुः परे:॥६
ध्यातृध्यान विहीनोऽस्मि ध्यान हीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम्।
लक्ष्यालक्ष्य विहीनोऽस्मि लय हीन रसोऽस्म्यहम् ॥७

आत्म अनातम दृष्टि दो, चित्त स्वभाव पयान। विचार आतम जुड़े दृढ़ दृष्टि अनातम हान॥
सर्ग आदिमें जगत यह,हुआ नहीं त्रयकाल।अहं विश्व जग बाध सब,नहिं अभ्यासहि चाल॥
ध्याता ध्यान दोसे परे, ध्येय ब्रह्म नहिं मीत। पर हूँ लक्ष्य अलक्ष्य से, नहीं सत्य लय नीत॥

प्रश्न—अनात्म रूप जगत् यदि असत्य है तो प्रतीत क्यों होता है ?

उत्तर— आत्माकार व अनात्मकार चित्त के ही दो प्रवाह हैं, आत्मा चिंतन द्वारा अनात्म वासनाओं को जीतकर ब्रह्म की धारणा करो ॥५॥

दृश्य (प्रपंच) भ्रान्ति से भासता है वास्तव से नहीं १ उत्पति, विनाश होने वाले पदार्थ सत्य नहीं होते २, स्वप्न जगत निन्द्रा (बेहोशी) में सत्य भासता है चेत (जाग) कर नहीं रहता तैसे यह प्रपंच झूठा है ३ जो एक रस रहे वही सत्य है, नित्य विकारी (तबदीली वाला) जगत् असत्य है ४ संसारी लोग भी जगत् को झूठा बताते हैं ५ सात्विक काल में सब का जगत् मिथ्या जान पड़ता है ६ सत्य शास्त्रों में जगत् को मिथ्या वर्णन किया है,७ प्रपंच का अर्थ ही झूठ है ८ संसार नाम संसरने का है ९ इस जगत् का कारण माया ही छल रूप है १० मृत्यु समय राम २ सत्य है और सब असत्य यह शब्द चारों ओर सुनाई देता है ११ गो गोचर जहँ लग मन जाई, सो सब मया जानों भाई। यह रामायण में वर्णित है १२ सज्जन विचार से जगत् को झूठ (स्वप्न रूप) कहते हैं १३ इन्द्रजाल सम दीखता हुआ जगत् सत्य नहीं १४ अनेक वेद प्रमाणों व युक्तियों से प्रपंच असत्य निश्चय होता है १५ मन के प्रवृत हुये जगत् भासता है और मन के लय हुए विलय होता है इसी विचार को विद्वान् अभ्यास जानते हैं ॥६॥

अति सूक्ष्म अद्वैत रूप ब्रह्म मैं हूँ मेरे में ध्याता, ध्यान, ध्येय रूप जगत् का अत्यन्ताभाव है यह वेदान्त का सिद्धान्त है और लक्ष्य व अलक्ष्य भाव से रहित तथा लय होने से अतीत ब्रह्म मैं हूँ ॥७॥

मातृमानविहीनोऽस्मि मायाहीनशिवोऽस्म्यहम्। सर्वेन्द्रियविहीनोऽस्मि सर्वकर्मकृदप्यहम्॥
सर्वप्रकाशरूपोऽस्मिचिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम्। कालत्रयविमुक्तोऽस्मिकामादिरहितोऽस्म्यहम्॥
मुक्तहीनोऽस्मिमुक्तोऽस्मिमोक्षहीनोऽस्म्यहंसदा।गंतव्यंदेशविहीनोऽस्मिगमनादिविवर्जितः॥
सर्वदा समरूपोऽस्मि शांतोऽस्मि पुरुषोत्तमः। चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासदेवोऽजरोऽमरः॥
अहमेवाक्षरं ब्रह्मवासदेवाख्यमद्वयम्। पर ब्रह्म स्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम्॥१२
निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मिनिरीहोऽस्मिनिरामयः। अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मिह्यनन्तानन्दरूपवान्॥

माणहि माता नहि उभय,मेय विना शिवरूप। विषय इन्द्रियों का नहीं, हो सब क्रिया अनूप॥
सब को करूं प्रकाश में, ज्ञान दीप सम आहि। काल तीन से परे हूँ नहीं किसी की चाहि॥
मुक्तरहित भी मुक्तमम,बन्ध मोक्ष नहिं चीन। गमन योग्य नहि देशमम,गमन क्रियासे हीन
नित्य रूप सामान्य मम,नारायण दुख नाश।चेतन अक्षर सत्य वपु,पूर्ण अजर अविनाश॥
अक्षर पूरण ब्रह्म चिद्, वासदेव इक रूप। व्यापक हूँ माया परे, परमानन्द स्वरूप॥
मम स्वरूप है भेद विन,इच्छा रहित अरोग।पूरण सभी अनंत लखु,सुक्ख रूपनहि शोग॥

प्रश्न—यदि जगत् असत्य है तो इसका वास्तविक स्वरूप क्या है वह कृपा कर वर्णन कीजिये।

उत्तर—प्रमाता, प्रमाण प्रमेय आदि सब त्रिपुटियाँ वास्तव से केवल शिव स्वरूप ब्रह्म है अतः सब इन्द्रियों व मन आदि के रूप व नाम और व्यवहारों के कल्पित होने पर जगत की रचना से मुक्त ब्रह्म में हूं॥८॥

भूत, भौतिक सब प्रपंच का एक रस प्रकाशक (सिद्ध करता) स्वयं प्रकाश चैतन्य ब्रह्म में (आत्मा) वास्तव रूप सर्वदा मुक्त और काम आदि राजस तामस वृत्तियों से अतीत हूँ॥९॥

में चैतन्य सदैव मुक्त स्वरूप हूं अतः मेरे में मुक्त होने की इच्छा नहीं यानी नित्य मुक्त स्वरूप, एक रस ब्रह्म क्रिया अतीत ब्रह्म में हूं॥१०॥

सब जगत् का आधार व षट्विकारों से रहित पुरुषोत्तम माया का अधिष्ठान नारायण देव चिदानन्द ब्रह्म में हूं॥११॥

नाश रहित सब में अनुस्यूत ब्रह्म चैतन्य सबको सत्ता व ज्ञान शक्ति देने वाला अद्वैत रूप, माया से परे आनन्द समुद्र के लेशानन्द से त्रिलोकी के सब जीव आनन्दित होते हैं वह परमानन्द ब्रह्म में हूं॥१२॥

निर्विकल्प (भेद व संशय से रहित) और सब क्रियाओं व इच्छा आदि से मुक्त अदुःख पद हूँ और तीनों परिच्छेदों से अतीत अविनाशी नित्यानन्द स्वरूप अद्वैत ब्रह्म में हूं॥१३॥

आत्माराम स्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ।
आदि मध्यान्त शून्योऽस्मि ह्याकाश सदृशोऽस्म्यहम् ॥१४॥
सर्वाधिष्ठान रूपोऽस्मि सर्वदा चिद्घनोऽस्म्यहम् ।
चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १५ ॥
आकाशादपिसूक्ष्मोऽहमाद्यन्ताभाववानहम् । सत्तामात्रस्वरूपोऽहंज्ञानानन्दघनोऽस्म्यहम्
नामरूप विमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः ।आदि चैतन्य मात्रोऽहमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥१७॥
सर्वत्र पूर्ण रूपोऽहं परमामृत रसोऽस्म्यहम् । एकमेवाद्वितीयं सद्ब्रह्मैवाहं न संशयः॥१८॥
अहंब्रह्मास्मिमन्त्रोऽयंजन्मपापं विनाशयेत्। अहंब्रह्मास्मिमन्त्रोऽयंकोटिदोषानविनाशयेत्१६

आतम ब्रह्म स्वरूप चित, नित्य परमकल्यान। आदि अंत मधि रहितहूँ, सम आकाशपिछान॥
अधिष्ठानमैं दृश्य सब, इकरस नित्य अनूप। चित्त वृत्ति से रहित जो, आतम चिद है रूप॥
सूक्ष्म हूं आकाश से, आदि अन्तसे रहित। केवल सत्य स्वरूप मम, चेतन आनन्द सहित॥
नाम रूपसे रहित मम, हों आनन्द स्वरूप। कारण चेतन मात्र सब, इक रस पूरण रूप॥
सबमें व्यापक रूप जो, मैं अमृत का सार। भेद रहित हूँ एक पुनि, सत मैं ब्रह्म अपार॥
अहं ब्रह्मकर ध्यान यह, दोष कोटि सब नाश। मंत्र लक्ष्य यह ब्रह्म मैं, चिदानन्द की आश॥

प्रश्न—सब में व्यापक सत्य आत्मा को अपना स्वरूप कैसे जानें ?

उत्तर—सब जगत् में पूर्ण सर्वात्मा, शिवरूप, आदि, मध्य, अन्त से रहित आकाश से भी सूक्ष्म अनुस्यूत रूप अवाच्य पद में हूँ ॥१४॥

सब संसार का अधिष्ठान (वास्तविक रूप) से चैतन्यात्मा मैं हूँ और प्रमा, अप्रमा, भेद, स्मृति अभाव इन पाँचों वृत्तियों से अतीत इनका प्रकाशक एक रस चिदात्मा मैं हूँ ॥१५॥

आकाश बल्कि माया से भी सूक्ष्म, अविनाशी, तीनों कालों से परे मुक्त रूप, केवल सत्तामात्र, ज्ञानानन्द, एक रस, ब्रह्मात्मा मैं हूँ ॥१६॥

नाम, रूप, क्रियात्मिक सब जगत से अतीत, केवल आनन्द स्वरूप संसार का आदि (कारण) चैतन्यमात्र और सजाति, विजाति, स्वगत इन तीनों परिच्छेदों (भेदों) से मुक्त, अखण्ड स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ ॥१७॥

सब में व्यापक, अमृतमय, अद्वैत स्फुरण (चेतन), द्वैत कल्पना से रहित त्रयकाल अबाध्य मैं हूँ यह निसंशय है ॥१८॥

अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ) यह वेदों का महा मन्त्र है इसको महावाक्य भी कहते हैं इसका अभ्यास अनेक जन्मों के पातिकों को नष्ट करता और काम क्रोध आदि सम्पूर्ण वासनाओं को दूर करके शुद्ध करता है अतः इसका सदा अभ्यास करना चाहिये ॥१६॥

सर्वं मन्त्रान्समुत्सृज्य एतन्मन्त्रं समभ्यसेत् ।
सद्यो मोक्षमवाप्नोति नास्ति संदेहमण्वपि ॥२०॥
पूर्वमद्यत्वेदानीमिहामुत्रोभयत्रच । विहितोऽविहितोप्येप समः सर्वासु वृत्तिपु ॥२१॥
नित्यस्पंद मयो नित्यमपि देवात्सदा गतेः । स्थाणोरप्य क्रियो नित्यमाकाशादप्यलेपकः॥२२॥
चेतनाकलना रूपीस वाह्याभ्यंतराश्रितः।जगत् पदार्थ संभारे सत्ता सामान्य मास्थितः॥२३॥
अहमेवास्मिमे नास्ति कलनापि किलतरा। रेणु नेवाणु नाव्योम्नि पद्म पत्रमिवांभसा ॥२४॥

मन्त्र और सब त्यागके,इसका कर अभ्यास।होवो मुक्त अवश्य तुम,संशय भ्रम विनाश
इकरस आतम लोक त्रय,विहित निषिद्ध प्रतीति। भोक्ताभासत शुद्धलख,साक्षीसभीअतीत॥
है अक्रिय गति वायुसम,अचल ठूठवत जान । अलिप्त नभ तुल आत्मा,मुक्तरूप वर ज्ञान॥
स्पंदकला संयुक्त लखु, वाह्यांतर आधार । अधिष्ठान जग सर्व गत, सत्ता ब्रह्म अपार॥
शुद्ध नित्य है रूपसम,सत्र संबन्धहि हीन । रज आकाशहिलिप्तनहि,वारि कमलवत चीन॥

प्रश्न—वेद, शास्त्रों में अनेक उत्तम २ मन्त्र लिखे हैं इसमें विशेषता क्या है? यह अर्थ मेरे बोध की दृढ़ता के लिये कहिये ।

उत्तर—सम्पूर्ण जपों, तपों व यज्ञों और भी शुभ कृतों की अपेक्षा से यह महावाक्य रूप मन्त्र सर्व वेद का सार है, इसके नित्य अभ्यास करने पर मनुष्य शीघ्र कैवल्य भाव को प्राप्त होता है ॥२०॥

आत्मदेव तीनों कालों में एक रस और चतुर्दश भवनों में पूर्ण, तथा शुभाशुभ कर्मों का प्रेरक, और सर्व का भोक्ता, वास्तव से असंग, अर्थात् सुख, दुःख आदि से मुक्त, परमार्थ दृष्टि से नित्य अक्रिय, शुद्ध, सब अनुस्यूत ब्रह्म है ॥२१॥

ब्रह्मात्मा नित्य अचल हुआ भी वाह्य दृष्टि से पवन से शीघ्री वेग वाला और सब में पूर्ण हुआ भी सदा अलिप्त है । उस परम सूक्ष्म ब्रह्मात्म का निरन्तर अभ्यास करना कर्त्तव्य है ॥२२॥

फुरणे रूप कलना सहित ब्रह्मात्मा प्रतीत होता भी असंग और माया आदि सब उपाधियों में स्थित, समुद्र समान जगत् का आधार है तथा समस्त जगत् में सत्ता समान्य (पूर्ण) है ॥२३॥

मैं ब्रह्मात्मा सदैव शुद्ध व सर्व से अतीत हुआ आकाश की नांई सदा अलिप्त और सर्वथा अक्रिय तथा जल में कमल पत्र के समान निर्लेप हूँ, ऐसा अभ्यास करना मुक्त दाता है ॥२४॥

गीता समुदाय ज्ञान प्राप्ति छटा रत्न (६)

श्रीराम गीता विभास (२६)

अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो भवापवर्गं तव योगिभावितम्।
यथाऽञ्जसाऽज्ञानमपारवारिधिं सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥१
आदौ स्ववर्णाश्रम वर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादित शुद्धमानसः।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः समाश्रयेत् सद्गुरुमात्मलब्धये ॥२
अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥३
तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीर्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत्।
आत्मानुसन्धानपरायणः सदा निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥४
यदा परात्मात्मविभेदभेदकं विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम्।
तदैव माया प्रवि लीयतेंजसा सकारकाकारणमात्मसंसृतेः ॥५

भो भगवन् मैंशरण हूँ, नाशो भय संसार। शीघ्र ज्ञान मुहि दीजिये, पावों मुक्त अपार॥
कर्म उपासन प्रथम कर,मल विक्षेपहोंनाश। फिर सद्गुरुकी शरणले,धार ज्ञान की आश॥
बन्ध कारण अज्ञान है, ज्ञान सीखिये तात। कर्म ज्ञान का भेद अति, तजो कर्म तव भ्रात॥
विषय वासना छोड़ कर,कर्म फल भी त्याग। आतम चिन्तन कीजिये,रहैं भोग नहिं राग॥
जीव ब्रह्म के भेद का, करे ज्ञान सब नाश। कारण माया नष्ट हो, पावो आनन्द राश॥

प्रश्न—एकान्त में प्रसन्नतापूर्वक देख श्रीरामजी को लक्ष्मण कहने लगा। कि हे भगवन् मैं आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ अतः जन्म, मरण के भय दूर करने वाला ज्ञान मुझे दीजिये, कि जिसकर मुक्ति की प्राप्त होवे ॥१॥

उत्तर—हे भ्राता! पहिले वर्णाश्रम के अनुसार कर्म, उपासना करते हुये अधिकारी के मल, विक्षेप दोनों दोषों के निवृत्ति होने पर अंतःकरण ज्ञान प्राप्ति के योग्य होता है तब सद्गुरु के समीप जाकर ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये विनीत भाव से उपदेश लेना चाहिये ॥२॥

बन्ध का हेतु स्वरूप का अज्ञान है उसके दूर करने के लिये ज्ञान को पाना उचित है तब कर्म, उपासना को त्याग देना योग्य है हेतु यह है कि कर्म, उपासना दोनों भेद से होते हैं और ज्ञान से भेद नष्ट होता है ॥३॥

कर्म की कर्त्तव्यता और उसका फल विषय भोगों को भी त्यागकर ब्रह्मात्मा चिन्तन करते हुए अज्ञान दूर होता है ॥४॥

ब्रह्मज्ञान के प्रयत्न से भेद भ्रम नष्ट होकर साथ उसके कारण अज्ञान का भी नाश होने पर परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति होती है ॥५॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा कथंभविष्यत्यपि कार्यकारिणी ।
विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयतस्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥६
यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते कर्त्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।
तस्मात् स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ॥७
श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतो गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखी भवेन्मेरु रिवाप्रकम्पनः ॥८
एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत्तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयं पदार्थाविच भागलक्षणा युज्येत तत्त्वं पदयोरदोषतः ॥६
रसादिपंचीकृतभूतसम्भवं भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ।
शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥१०

युक्ति प्रमाणहि ज्ञान हो,मूलाज्ञान विनाश। पुनः जन्म होता नहीं, जग कारण हो नाश ॥
अनुभव पीछे अहंता,नहीं होवे प्रतीत। स्वतंत्र नाशे जगत को, मोक्ष सुरक्ख हो मीत ॥
वेद गुरू विश्वास धर, तत्वमसी सुन वाक। आतम परात्म एकता, पाय आनन्द छाक ॥
जहति अजहती त्याग पुनि,भाग त्याग को जोड़। जीव ब्रह्म की एकता,भेदाभरमसबतोड़॥
पञ्चीकृत कर जोरचा, वह भौतिक प्रपंच। स्थूल उपाधी त्याग कर, ब्रह्म ज्ञान को संच ॥

प्रश्न--ब्रह्मज्ञान के प्राप्त हुए जन्म मरण होते हैं विदेह मुक्ति होतीहै।

उत्तर- वेद, वेदान्त के प्रमाणों व युक्तियों के द्वारा दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान को प्राप्त होकर जन्म, मृत्यु से रहित हुआ ज्ञानी ब्रह्म में अभेद होता है ॥६॥

ब्रह्म बोध हुए पश्चात् देह अभिमान आदि नहीं रहते किन्तु और की सहायता से बिना स्वतन्त्र (इकला) ब्रह्मज्ञान हो जगत् व तत्कारण अज्ञान को नाश करके मुक्ति देने में सामर्थ्य है ॥७॥

वेद और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के वाक्यों में श्रद्धापूर्वक शिष्य तत्वमसि आदि महावाक्यों को श्रवण करके ब्रह्मात्मा की एकता को निश्चय करता हुआ पूर्णानन्द से तृप्त होता है ॥८॥

वेदान्त में जहति व अजहति और भाग त्याग तीन प्रकार की लक्षणा वर्णन की हैं उनमें अन्त की भाग त्याग लक्षणा का महावाक्यों के विचार में उपयोगहै अर्थात् वाच्यार्थ में विरोधी अंशों (उपाधियों) को त्यागकर तत्, त्वं पदों में स्थित लक्ष्य अर्थों की एकता निश्चय होती है ॥६॥

पांचों भूतों के पंचीकरण से तय्यार हुए स्थूल शरीर को असज्जड़ जान करके सर्व का अधिष्ठान (वास्तव स्वरूप) ब्रह्मात्मा की यथार्थ एकता को प्राप्त होना योग्य है उससे आवर्ण की निवृत्ति होकर प्रारब्ध के समाप्त हुए विद्वान् निर्वाण पद में विश्राम पाता है ॥१०॥

सूक्ष्मं मनोबुद्धि दशेन्द्रियैर्युतं प्राणैरपञ्चीकृत भूतसम्भवम्।
भोक्तुः सेखादेरनुसाधनं भवेच्छरीरमन्यद्धि दुरात्मनो बुधाः ॥११॥
अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं माया प्रधानं तु परं शरीरकम्।
उपाधि भेदातु यतः पृथक् स्थितं स्वात्मानमात्मन्य व धारयेत्क्रमात् ॥१२॥
बुद्धे स्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः।
अन्योऽन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥१३॥
देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां संघादजस्रं परिवर्त्तते धियः।
वृत्तिस्तमोमूलतयाऽज्ञलक्षणा यावद्भवेत्तावदसौभवोद्भवः ॥१४॥
नेति प्रमाणेन निराकृतऽखिलो हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं पीत्वा यथांभः प्रजहाति तत्फलम् ॥१५॥

सूक्ष्म अपञ्ची कृत हो, मन इन्द्रिय संसार। इससे न्यारा जानिये, आतम ज़गदाधार॥
अनादि अवाच्य देह लखि, माया वपु अज्ञान। तीनों देहों से परे, शुद्ध आतमा जान॥
त्रय गुण माया फैलती, मिथ्या उसका भाव। जाग्रत स्वप्नसुषुप्तिसे, एक ब्रह्म परभाव॥
देह इन्द्रियां प्राण मन, चैतन सत्ता पाय। चेष्टा होवे जब तलक, तभी जगत् कहाय॥
नेति नेति श्रुति वाक्य से,व्यवहारहि सब बाध। ज्ञान अमृत को पान कर, त्यागो सभी उपाधि

प्रश्न--मन, बुद्धि आदि आत्मा से मिले हुये भासते हैं इनका अभेद कैसे है यह वर्णन कीजिये?

उत्तर--पांचों भूतों का पञ्चकरण न होकर उनके सात्विक, राजस आदि गुणों से चार अंतःकरण, पांच प्राण, ज्ञान, कर्म इन्द्रियां बनती हैं यह सब समाज, भूतों का कार्य होनेसे जड़,असत्य है और ब्रह्मात्मा इनसे विलक्षण सत्य स्वरूप सब जगत् का अधिष्टान है ॥११॥

अनादि, अनिर्वचनीय रूप तीसरा कारण शरीर है उसको अज्ञान और समष्ठि रूप से माया कहते हैं यह भी अनात्म दृश्यरूप है अतः इससे भिन्न शुद्धात्मा निश्चय करने योग्य है ॥१२॥

तीनों गुणों सहित माया ही संसार रचना रूप होकर विस्तार पाती है अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय आदि त्रिपुटि रूप जगत् हो भासती है और इस मिथ्या प्रपंच से ब्रह्मात्मा अतीत है ॥१३॥

स्थूल शरीर, प्राण, इन्द्रियां और अन्तःकरण यह सब आत्मा की सत्ता को पाकर व्यवहार करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण सब मिलकर जगत् कहाता है इसका प्रकाशक स्वयं ज्योति ब्रह्मात्मा इससे परे है ॥१४॥

श्रुति में वर्णन हुये नेति, नेति इस वाक्य से कारण, कार्य व जड़, चेतन, और भाव, अभाव सब को बाध (मिथ्या) जान करके जीव ब्रह्म की एकता का दृढ़ निश्चय रूप ज्ञानामृत से तुम तृप्त होवो ॥१५॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते न क्षीयतेनाऽपि विवर्द्धते नवः।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयंप्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥१६॥
एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते।
अज्ञानतोऽध्यासवशात् प्रकाशते ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥१७॥
यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः।
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥१८॥
अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक्स्थितो बुद्ध्याऽपरिच्छिन्नपरः स एव हि ॥१९॥
चिद्बिम्बसाक्षात्मधियां प्रसंगतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत्।
अन्योऽन्यमध्यासवशात्प्रतीयते जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥२०॥

जन्म मृत्यु बिन आतमा, इकरस इस को जान। षट् विकार से रहित नित, स्वयप्रकाश सुखखानि॥
ज्ञान आनन्द रूप में, दुख रूप संसार। यह अध्यास बनता नहीं, बाध करो जग छार॥
विपरीत भासे वस्तु जो, भ्रम अध्यास स्वरूप। रजू सर्प ह्वो भासता, त्यों मिथ्या जगरूप॥
ब्रह्म अविद्या योग से, जीव कहावे सोइ। साक्षी जानो बुद्धि का, न्यारा आतम जोइ॥
चित्त चैतन्य संग कर, भासे जग व्यवहार। पावक लोहा तप्त कर, लाल उष्ण वपु धार॥

प्रश्न--आतममेंही जन्म, मरण आदि प्रतीत होतेहैंफिर न्यारा कैसे जाने?

उत्तर--जन्म, मृत्यु आदि विकार स्थूल देह के हैं आत्मा उत्पति आदि षट् विकारों से अतीत स्वयं प्रकाश संसार से विलक्षण आनन्द समुद्र है ॥१६॥

चैतन्य स्वरूप आनन्द भण्डार में असज्जड़, दुःखरूप संसार का तीनों कालों में संबन्ध (अध्यास) बन नहीं सकता इसलिये सब जगत् को स्वप्न सृष्टि के समान मिथ्या जानकर अद्वैत निष्ठा करो ॥१७॥

जो ब्रह्मात्मा से विपरीत (उलटे) स्वभाव वाले पदार्थों का चैतन्यात्मा से सम्बन्ध ही नहीं तो अध्यास क्यों माना जावे, जैसे रजु में सर्प की एकता (अध्यास) मिथ्या है तैसे ही ब्रह्मात्मा में मिथ्या जगत् प्रतीत होता है। यथार्थ युक्तियों से इन सब का अत्यंताभाव निश्चय करना श्रेयस्कर है ॥१८॥

ब्रह्म व अविद्या के कल्पित संबन्ध से अज्ञान दशा में जीव कहाता है और विचार (ज्ञान) द्वारा अविद्या व बुद्धि आदि का साक्षी (प्रकाशक) ब्रह्मात्मा इस समाज से सदा न्यारा है ॥१९॥

चित्त (अहंकार) व चैतन्य में मिथ्या संबन्ध आरोप करके जगत् के सब व्यवहार भासते हैं जैसे अग्नि के संग को पाकर लोहे में लाली व तप्तता आदि गुण प्रतीत होते हैं। तैसे चैतन्य आत्मा के तादात्म्य से बुद्धि, इन्द्रियों आदि में ज्ञान व चेष्टा होती भासती है ॥२०॥

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीवनिर्मलः ॥
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥२१॥
विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियोविनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः॥
विभावयेदेक मनन्यसाधनो विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥२२॥
आकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ॥
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥२३॥
एवं सदा ज्ञानपरात्मभावनः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः ॥
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकःसाक्षाद्धि मुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥२४॥
ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनिस्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्त बन्धनः ॥
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥२५॥

प्रकाश अद्वै जन्म बिन,निर्मल ज्ञान स्वरूप। निर्विकार आनन्दमय साक्षी सभी स्वरूप॥
इकाग्र इन्द्रिय जीतमन, अभ्यासहि शुध चीन। नित ब्रह्मातम ध्यानसे, अद्वै निष्ठा बीन ॥
अकार उकार मकारहु, ओ३म् मात्तिरातीन। ब्रह्म ज्ञानमें लीन जब, सभी एकता चीन ॥
हो ऐसा विज्ञानदृढ़, प्रकाश व्यापक रूप। जगत बाध आनन्द लय, मुक्त अचल स्वरूप ॥
सदैव चितवें मुनीवर,सब सबन्ध हो छीन। अन्त प्रारब्ध भोगकर, मुक्त चेतन में लीन॥

प्रश्न—तीनों गुणोंसे अतीत ब्रह्मात्माके सब विशेषण मुक्तिके लिये कहिये।

उत्तर—मैं (ब्रह्मात्मा) स्वयं प्रकाश अजन्मा, अद्वैत, नित्य शुद्ध, चैतन्य घन, निर्विकार, आनन्द स्वरूप सब का साक्षी हूँ, अधिकारियों को सदैव यह चिंतन करना उचित है ॥२१॥

एकान्त स्थान में एकाएकी स्थिति हो मन, इन्द्रियों को स्व २ विषयों से रोक करके सदा ब्रह्मात्मा का अभ्यास करते हुए अद्वैत निश्चय होने पर सब दुखों का अभाव और परमानन्द की प्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति होतीहै॥२२॥

व्यष्टि विश्व, समष्टि विराट व व्यष्टि तैजस, समष्टि हिरण्यगर्भ और व्यष्टिप्राज्ञ,समष्टिईश्वर यह ओ३म् कीतीनमात्राहैंइनके विचारद्वारा शुद्धनिर्गुण ब्रह्मात्मा रूप चतुर्थ मात्रा में एकता निश्चय करके मुक्त प्राप्त होती है ॥२३॥

पहिली कही युक्तियों व प्रमाणों करके स्वयंप्रकाश, व्यापक ब्रह्म का दृढ़ बोध जब प्राप्त होता है तो सब जगत् का अत्यन्ताभावं जानकर परमा-नन्दरूप अचल पद में स्थिति होती है ॥२४॥

मननशील पुरुष सब संसार के संग को त्याग देते हैं और नित्य ब्रह्मात्मा का चिंतन करते हुये विज्ञान को प्राप्त होते हैं तथा प्रारब्ध के अंत हुये निर्वाण पद को पाते हैं। हे प्रिय भ्राता! इस प्रकार तुम भी सब जगत् से उदासीन होकर ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मुक्त चैतन्य में अभेद होवोगे ॥२५॥

भगवद्गीता सार विभास (२७)।

अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः किंनु महीकृते। निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन॥१
एवमुक्त्वाऽर्जुनःसंख्ये रथोपस्थ उपाविशत्ः विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥२
यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥३॥
नासतो विद्यते भावो नभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥४
अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धयस्व भारत॥५

हतें दुष्ट मुझको जभी, तो भी मारूं नाहि। तीन लोक के राज्य हित, तुच्छ भूमि किम चाह॥
यहकहि अर्जुन मौनधर, धनुषबाण तजदीन। करूं युद्ध नहिं कृष्णजी, मन व्याकुल अतिदीन॥
मोह, शोक नहिं व्यापते, सुखदुखमें रह धीर। ज्ञान मुक्ति के योग्य वह, हे अर्जुन सुन वीर॥
असत्यका होना नहीं, सत्य होय नहिं नाश। इन दोनोंके नियम का, ज्ञानी हृदय प्रकाश॥
देह विनाशी हैं सभी, ब्रह्म नित्य अविनाश। अनन्त अपार आतमा, युद्ध करो तज आश॥

प्रश्न—कुरुक्षेत्र भूमि में संग्राम के आरम्भ समय धृतराष्ट्र सञ्जय से कहने लगा कि हे महात्मन्! युद्ध के सब वृतान्त को मेरे प्रति सुनाइये।

उत्तर—हे महाराज! दोनों सैनाओं में स्थित गुरु व वृद्ध और सम्पूर्ण कुटुम्बी लोगों को युद्ध में प्रवृत्त हुये देखकर मोह, शोक से घिरा हुआ अर्जुन भगवान् से कहने लगा कि हे मधुसूदन! अतिताईयों करके पीड़ित हुआ और तीनों लोकों के ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये भी इनको में मारना नहीं चाहता तो अल्प राज्य सुख के लिये युद्ध कैसे कर सकता हूँ॥१॥

अति अधीर हुआ अर्जुन धनुष, बाण को त्याग कर बोला कि हे केशव जी मैं युद्ध नहीं करूँगा ऐसा कहि चुपके रथ पर बैठ गया॥२॥

युद्ध समय की कायरता को देखकर अर्जुन के कल्याण के लिये श्री कृष्ण कहने लगे कि हे शूरवीर पार्थ! जिसके हृदय को मोह, शोक आदि पीड़ित नहीं करते वह सज्जन ज्ञान प्राप्ति द्वारा मुक्ति के योग्य होता है॥३॥

सत्य आत्मा का नाश नहीं होता और देह आदि सदा रहते नहीं इन दोनों नियमों को ज्ञानी जानता है अतः यह निश्चय करके तुम स्वधर्म रूप युद्ध में सावधान हो॥४॥

सब शरीर नाशवान् और आत्मा सब विकारों से रहित अनन्त अपार है इसलिये हे अर्जुन! भय, चिन्ता व जय, अजय की आशा को त्याग युद्ध के लिये उठ खड़ा हो॥५॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥६
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबंधविनिर्मुक्ताःपदं गच्छंत्यनामयम् ॥७
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥८
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतःशांतिरशांतस्य कुतःसुखम् ॥९
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥१०
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥११

तीन गुणों को वेद कहिं,निर्गुण होवो तात।द्वंद त्याग कर स्वस्थरह,योग क्षेम तज भ्रात॥
बुद्धि युक्त विद्वान हो,कर्म फलहि तज आश। सबही बन्धन तोड़के,हो आनन्द प्रकाश॥
दुखमेंव्याकुलमननहीं,सुखकी नहीं अभिलाष।राग क्रोध भयत्याग सब,ज्ञानसहितसुखराशि
योगहीन की बुद्धि नहिं,नहीं अयोगी भाव। विना भावना शान्त किम,शांतिविना दुखपाव॥
विना किए नहिं रहि सके,क्षण मात्र भी कोइ। प्रकृति कराय कर्म नित,करो धर्म सुख होइ॥

प्रश्न—वेद आदि में मर्यादा वर्णन की हैं उनको मैं कैसे त्याग सकता हूँ इसलिये क्रूर युद्ध करना उचित नहीं।

उत्तर—सब वेद, शास्त्र तीन गुण मय सृष्टि की मर्यादायें लिखते हैं और मैं ऐसा उपाय बताता हूँ कि जिसकर तू कर्म रूप बन्धनों से मुक्त होगा तीन गुणों से अतीत निर्गुण ब्रह्म है उसको तू अपना स्वरूप जान कर युद्ध आदि व्यवहारों को करता भी विना यत्न परम गति पावेगा ॥६॥

कर्म के फल की इच्छा को त्याग कर संसार के सब दुःखों से मुक्त हुआ बुद्धिमान पुरुष परमानन्द को प्राप्त होता है ॥७॥

दुःखों में व्याकुलता रहित विद्वान ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से संसार सुखों की आशा को त्याग आनन्द समुद्र में एकमेक होता है ॥८॥

मन की एकाग्रतारूप योग किये विना बुद्धि व सद्भावना नहीं होती और शुद्ध भावना के विना शान्ति नहीं मिलती तथा शान्ति हुए विना नित्य सुख प्राप्त नहीं होता ॥९॥

कोई भी देहधारी सदा निष्क्रिय नहीं हो सकता किंतु प्रकृति व्यवहारों में अवश्य जोड़ती है अतः स्वधर्म करना ही मुक्ति प्रद है ॥१०॥

श्रेष्ठ मनुष्य जैसा आचरण करे वैसा और करते हैं तथा जिस अर्थ को उत्तम पुरुष प्रमाण माने अन्य लोग उसी को सत्य जानते हैं ॥११॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥१२
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्त्तारमव्ययम्॥१३
यस्य सर्वे समारंभाःकामसंकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुःपण्डितं बुधाः॥१४
त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।कर्मण्याभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः१५
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥ १६
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति। नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥१७

स्वधर्मकरना श्रेष्ठ अति,विगुण अल्प भी होइ। स्वधर्ममें मरना भला,अन्यधर्म भय जोइ॥
गुण कर्मन के योग से,वर्णचार मोह कीन।करता मैं सब सृष्टि का,अक्रिय इकरस चीन॥
त्यागकिये आरम्भ जिस,सभी वासनारहित। ज्ञानअग्निसे कर्मजर,उसको ज्ञानी कहित॥
कर्म संग फल सब तजे, संतोषी स्वाधीन। कर्म मध्य प्रवृत्त भी, तो सब क्रिया हीन॥
हवन आदि कारक सभी, फल इच्छा अरु भोग। सबको जाने ब्रह्ममय,आतम पदमें योग॥
अज्ञानी श्रद्धा रहित, होवे संशय वान। नाशें सुख दो लोक के, परम गती हो हानि॥

प्रश्न—जिस युद्ध में पूज्य,वृद्ध आदिकों का वध हो वह क्यों किया जाय।

उत्तर—अपना धर्म क्रूर व कठिन और अल्प हुआ भी श्रेष्ठ है तथा स्वधर्म में मृत्यु होना भी भला है, बिराना धर्म ठीक किया हुआ भी सदोष भयप्रद है अतः जैसे बने अपना धर्म ही अवश्य करना चाहिये॥१२॥

सात्विक आदि तीनों गुणों व शुभाशुभ कर्मों के अनुसार मैंने चारों वर्णों का विभाग किया है और जगत का स्रष्टा हुआ भी वास्तव से मैं सदा असंग (मुक्त) हूँ तो भी लोक संग्रहार्थ मैं कर्म करता हूँ॥१३॥

वृथा आरम्भों को त्याग व लौकिक वासनाओं से रहित और ज्ञान अग्नि करके जिस के कर्म दग्ध (बाध) हुये हैं उसी को ज्ञानी जानों॥१४॥

जिसने सर्व कर्मों के फल की वासना त्यागी है व संतोषी, स्वतंत्र हुआ कर्मों में प्रवृत्ति होकर भी परमार्थ से वह क्रियाओं रहित मुक्त है॥१५॥

अर्पण, हवन, अग्नि, सांकल्प, करता, इच्छा, फल इत्यादि सबको ब्रह्म जानने वाला अवश्य ब्रह्म में एकमेक (अभेद) होता है॥१६॥

ब्रह्मज्ञान से हीन व श्रद्धा रहित और संशय युक्त मनुष्य तीनों नाश हुये दुर्गति पाते हैं। परन्तु संशयवान् को इस लोक का सुख व हृदय की शुद्धि और परमगति (मुक्ति) प्राप्त नहीं होती अतः संशय त्याग कर युद्ध में तत्पर हो इस में ही तेरा कल्याण होगा॥१७॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्माजितेन्द्रियः।सर्वभूतात्मभूतात्माकुर्वन्नपि न लिप्यते।१८।
विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः।१६।
ज्ञान विज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थोविजितेन्द्रियः।युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाँचनः।२०।
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।२१।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।२२।
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते।२३।

अभ्यासी शुभ आत्मा,मन इन्द्रिय जब जीत।सब भूतों में ब्रह्म लखि,असंग करता नीत।।
ब्राह्मण विद्या नम्र हो, गौ हाथी अरु स्वान।लखि चांडालहि दृष्टिसम, जाने स्वप्न समान।।
ज्ञान विज्ञान तृप्त नित, रह निष्क्रियसम कूट। लोहा सोना एक सम, योगी जाने झूंठ।।
वचन आहार मुक्त सब,कर्म योगव्यवहार। स्वप्न जाग्रतहि युक्त हो,दुःखहोइ सब छार।।
सब भूतों में आतमा, आतम में वह जान। शीघ्र ब्रह्म को जानता, हो आनन्द महान।।
मनका रोकन कठिन अति,यह कहते तुमसत्य।वैराग्यअभ्याससिद्धवर,तबमनहोइअसत्य।।

प्रश्न—किस उपाय से मुमुक्षु निर्लेप रहकर मुक्ति पानेके योग्य होता है?

उत्तर—सब इन्द्रियों व मन को स्व २ विषयों से रोक, दृढ़ अभ्यास द्वारा, सब भूत प्राणियों में ब्रह्म को पूर्ण जानने वाला ज्ञानी प्रारब्ध के अनुसार व्यवहार करता हुआ भी सदा असंग रहता है ॥१८॥

ब्रह्मविद्या व नम्रता आदि गुणों कर संपन्न ब्राह्मण, गऊ, हाथी, श्वान तथा चांडाल आदि नीच, ऊँच सब प्राणियों को स्वप्न के समान मिथ्या अथवा अधिष्टान ब्रह्म जानने वाला विद्वान् सम दृष्टि रहता है॥१६॥

वेदान्तार्थ को निश्चय करके लोहे व स्वर्ण को ज्ञान दृष्टि से मिथ्या मानने वाला ज्ञानी व्यवहार करता भी निष्क्रिय होता है ॥२०॥

युक्ति से आहार, व्यवहार व युक्ति पूर्वक कर्म, उपासना आदि अनुष्ठान में स्थित और जाग्रत व शयन भी युक्ति (मर्यादा) पूर्वक करने वाले का किया हुआ योग दुःखों का नष्ट करता है ॥२१॥

सब भूत, भौतिक जगत् में आत्मा को व्यापक और ब्रह्मात्मा में जगत् को कल्पित जानने वाला योगी (ज्ञानी) मुक्ति को प्राप्त होता है ।२२॥

मन का निग्रह रूप योग करना कठिन है, हे अर्जुन यह तुम्हारा कहना सत्य है परन्तु वैराग्य, अभ्यास करके मन वश में आता है। अर्थात् ज्ञान के अभ्यास द्वारा मन सहित सब जगत् का बाध होता है, यह मन का नाश मुक्ति प्रद है ॥२३॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाःसुकृतिनोऽर्जुन।आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥२४॥
उदाराःसर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैवमेमतम्। आस्थितःस हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमांगतिम्॥२५
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन। मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते।२६।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युःपापयोनयः।स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपियांति परांगतिम्
यथापि सर्वभूतानाँ बीजं तदहमर्जुन। न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।२८।
त्वमक्षरं परम् वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥२९॥

चारों मेरे भक्त हैं, आर्त इच्छु जिज्ञास। ज्ञानी मेरा भक्त दृढ़, नित मेरे में वास॥
नित मैं चाहूँ उसी को, महानाश्य सब पूज्य। यह मेरा सिद्धांत है, नहीं जाने वे सूज॥
ब्रह्माआदि लोक सो, पुनि २ आवत जात। हे अर्जुन तू मुझे लखि,होइ जन्म नहि तात॥
नीच जाति भी भजे जब, सब पावें मम रूप। उच्च श्रेणी मनुष्य तो, होवें ब्रह्म स्वरूप॥
जगत सभी का मूल मैं,जड़ चेतन संसार। अर्जुन मेरी सत्ता बिन, नहीं जगत् में सार॥
प्रधान अक्षर हेतु भी, समरस धर्म स्वरूप। सब सृष्टि का सार हो, मैं जाना तव रूप॥

प्रश्न--सब भक्त कितने प्रकार के हैं जो ईश्वर को अधिक प्रिय हैं।

उत्तर--श्रीकृष्ण का कथन है कि संसार में चार ही भक्त हैं आर्ति, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी, और पूजा पाठ आदि करने वाले निष्काम हुये मेरी भक्ती का पा सकते हैं ॥२४॥

वह चारों भक्त श्रेष्ठ हैं परन्तु ज्ञानी नित्य युक्त हुआ अत्यन्त प्रिय बल्कि मेरा आतमा (स्वरूप) है, बहुत लोग इस मेरे भाव को नहीं समझते हुये ब्रह्म वेत्ता में अरुचि मानते हैं यह भारी अविद्या है ॥२५॥

ब्रह्माजी के लोक से आदि सभी आने जाने वाले हैं, हे अर्जुन! तू मेरे वास्तव रूप ब्रह्म को निश्चय करके मुक्ति के योग्य होगा ॥२६॥

यदि शूद्र, स्त्री आर वैश्य भी स्मरण करके मेरे को पाते हैं तो ब्राह्मण, क्षत्रिय का तो कहना ही क्या है ॥२७॥

मैं सब जगत् के रचने वाला हूँ, मेरी सत्ता के बिना संसार मिथ्या है, यह जान कर तू भक्ती में सावधान हो ॥२८॥

हे भगवन्! मैंने आपके कथन से निश्चय किया है कि आप सब में प्रधान अक्षर स्वरूप सब जगत् के अधिष्टान हो, इस लिये मैं आप की शरण में स्थित हूँ ॥२९॥

समःशत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।शीतोष्णसुखदुःखेषु समःसंगविवर्जितः ॥३०
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।अनिकेतःस्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः३१
अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम्। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः३२
असक्तिरनभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥३३
अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।दानं दानं दमश्चयज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्३४
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधःपौरुष्यमेव च। अज्ञानंचाभिजातस्य पार्थसम्पदमासुरीम् ३५

अकाम पवित्रं द्वद्वं बिन,उदासीन गत व्याधि। वृथा आरम्भ त्यागके,प्रेम ज्ञान आराध ॥
सम स्तुति निन्दा तृप्त नित,मौनी रह संतोष।तजगृह ममता स्थिर मति,मोह प्रेममें तोष॥
दम्भहिंसा सब मानतज,क्षमा सरलरहि नीत।सद्गुरुकी सेवा करे,मन इन्द्रियको जीत ॥
गृहनारी सुत बन्ध जन,त्यागे ममता राग। सुक्ख दुःखमें सम रहे,ज्ञान पाइ बड़ भाग ॥
अभय चितकी शुद्धता,योग ज्ञानमें लीन । दान इन्द्रिय दमन कर,तप दृढ़ वेद प्रवीन ॥
दम्भ गर्व अरु अहंकृत,क्रोध दुष्ट बलपाय।यह सब हों अज्ञान से,अर्जुन असुर स्वभाय॥

प्रश्न--जगत के अधिष्ठान ब्रह्म की और किन २ साधनों से प्राप्ति होती है।

उत्तर--लौकिक वासनाओं को त्याग कर पवित्र आत्मा, शीत, उष्ण आदि द्वंदों को सहन करने वाला,वृथा आरम्भों का त्यागी मुझेपाता है॥३०

निन्दा, स्तुति में समान, यथा लाभ में संतुष्ट, मर्यादा से बोलने वाला और कुटुम्ब व गृह आदि में अयोग्य ममतासे रहित परमात्माको प्राप्त होता है ॥३१॥

दम्भ, हिंसा, अभिमान रहित, क्षमा संयुक्त, सरल स्वभाव अधिकारी सद्गुरु की सेवा में तत्पर, इन्द्रियों को जीतने वाला मुमुक्षु, ब्रह्मज्ञान को पा सकता है ॥३२॥

स्त्री, पुत्र व बन्धु जन तथा गृह, धन आदि में आशक्ति से रहित और सुख,दुख आदि में समान रहने वाला सत्य स्वरूपको अनुभव करता है ॥३३॥

भय, शोक आदि से रहित, शुद्ध चित्तवाला, ज्ञान, योग में स्थित और इन्द्रियों को वश करके वेद, वेदान्त के अर्थ में कुशल अधिकारी ज्ञान को पाता है ॥३४॥

कपटी, क्रोधी व देह अभिमान सहित, विषयाशक्ति, पर पीड़ा में सामर्थ्य इत्यादि दुर्गुण असुर प्रकृति वाले नीच मनुष्यों में होते हैं, वह मेरे को त्याग कर सदा अज्ञान में तत्पर रहते हैं उन असुर प्रकृति वालों को दोनों लोकों का सुख नहीं होता ॥३५॥

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥३६
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येत्तपोमानसमुच्यते ॥३७॥
प्रवृत्तिं न निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षञ्चयावेत्ति बुद्धिःसा पार्थ सात्विकी३८
शमो दमस्तमःशौचं क्षांतिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ३६
सहजं कर्म कौंतेय सदोपमपि न त्यजेत्। सर्वारम्भाहि दोपेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४०
विविक्तिसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः। ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥४१

शास्त्रविधिको त्यागके, इच्छासे व्यवहार।हृदय शुद्ध नहिं लोक सुख, भ्रमे बीच संसार॥
चित्तशुद्ध हो शील वृति,मौन रहे मनरोक। उत्तभाव निर्मल हिये, तप मन होइ विशोक॥
प्रवृत्ती निवृत्ती उभय,कार्य अकारज रूप। बन्ध मोक्ष अरु अभयभय,जाने सत्य स्वरूप॥
निर्वासन इन्द्रिय दमन,शरीर कृप शुचि बुद्धि।क्षमा आस्तिकहि सरलता, होइज्ञान प्रबुद्ध॥
सहज कर्म नहि त्यागिये, चाहे होइ सदोप। नैया आरम्भ दोप अति, ढके ज्ञान हो रोप॥
रहे एकान्त खायकम,मन सब इन्द्रिय जीत।सदा वैराग्य धार कर,अभ्यास धरते चीत॥

प्रश्न—किस धारणा कर परम पद प्राप्त होकर कृत कृत्यता प्राप्त होती है, वह कहिये।

उत्तर—जो शास्त्रों की विधि को त्याग कर अपनी इच्छा के अनुसार वर्ताव करता है वह हृदय की शुद्धि व लौकिक सुख और परम गति को नहीं पा सकता किंतु वेदान्त के अनुकूल धारणा करने पर कल्याण होता है ॥३६॥

अंतःकरण की निर्मलता, शील स्वभाव, मौनी अथवा सत्य, अल्प भाषी, मनके रोकने में तत्पर, शुद्ध स्वभाव वाला, अधिकारी, मानसी तप के द्वारा ब्रह्मज्ञान को शीघ्र प्राप्त होता है, यह धारणा अति उत्तम है ॥३७॥

प्रवृत्ति, निवृत्ति व कार्य,अकार्य और भय, अभय तथा बन्ध मोक्ष आदि के स्वरूप व फल को यथार्थ जानने वाला शुद्ध ज्ञान को पाता है ॥३८॥

वासना का त्याग, इन्द्रियों को रोकना, शरीर की कृपता, शुद्ध बुद्धि और वेद, शास्त्रों में श्रद्धा, क्षमा सहित, सरल मन वाला मुमुक्षु, ज्ञान के योग्य है ॥३६॥

सहज में प्राप्त स्ववर्णाश्रम का कर्म त्यागना नहीं चाहिये नया आरम्भ सदोष व दुःखदाई और ब्रह्मज्ञान को आच्छादित (ढकने) वाला है ॥४०॥

नित्य एकान्त का वास, अल्प व सादा आहार, मन इन्द्रियों को जीत कर वैराग्य में स्थित हो दृढ़ अभ्यास करने पर शीघ्र ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥४१॥

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि। निराकारं कथंवन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम् ॥१॥
वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञान विज्ञान मेव च। अहमात्मानिराकारः सर्वव्यापीस्वभावतः ॥२॥
अहमेवाव्ययोऽनन्तःशुद्ध विज्ञान विग्रहः। सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापिवर्त्तते ॥३॥
मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम्। मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः ॥४॥
न जातो न मृतोऽसित्वं न ते देह कदाचन। सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुति ॥५॥

जिसकर पूरित जगत सब,साक्षी बुद्धिमाहिं। निराकार शिव रूप निज, हों वन्दना काहिं॥
सार वेदान्त लखो यह, ज्ञान विज्ञान रूप। अति सूक्ष्म मैं आतमा व्यापक बोध स्वरूप॥
मैं अविनाशी अन्त बिन,शुद्ध बोध सब पार।सुःख दुःख नहिं दीखता,किसमें होइ अपार॥
मन आकाशहि सभी जग,मनसे परे शिव रूप।मन परमारथ से नहीं,यह सिद्धान्त अनूप॥
जन्म मरण तुझमें नहीं, तेरा नहीं शरीर। सभी ब्रह्म है प्रगट सब, कहें वेद लखि धीर॥

प्रश्न—भगवान दत्तात्रेय अवधूत जी कर वर्णन किया हुआ यथार्थ ब्रह्म ज्ञानमय जो सिद्धान्त है उसका संक्षिप्त सार में श्रवण किया चाहता हूँ कृपा करके सुनाइये।

उत्तर--जिसने अपनी माया शक्ति के द्वारा यह सब संसार आडंबर रचा है, वह वास्तव से नित्य, निराकार, सब में पूर्ण, कल्याणस्वरूप, अविनाशी है, उसको मैं कैसे भेद रूप से बन्दना कर सकता हूँ किन्तु वह सर्वात्मा सर्वत्र व्यापक अति सूक्ष्म है ॥१॥

वेद, वेदान्त शास्त्रों का सर्वस्व (सिद्धान्त) यह है कि चैतन्य रूप, स्वयं प्रकाश, सबमें बर्तने वाला ज्ञान, विज्ञान स्वरूप निराकार आत्मा मैं हूँ॥२

नित्य अविनाशी शुद्ध बोध मात्र मैं हूँ, अतः सुख, दुःख किसको व किस प्रकार से विद्यमान होते हैं यह मैं नहीं जान सकता, अर्थात् द्वन्दरूप सब रचना कल्पित (असत्य) है इसलिये जन्म मरण की शंका कदाचित मेरे में सम्भव नहीं ॥३॥

कल्पितरूप मन हो आकाशादि सब प्रपंचरूप होकर फैला है और वास्तव दृष्टि से यह मन तीनों कालों में सत्य नहीं तो इसका रचा संसार कैसे सत्य हो, यह विचार सब अज्ञान को दूर करता है ॥४॥

जन्म, मरण आदि विकार तेरे नहीं किन्तु शरीरों के हैं और तू देह नहीं इसका अधिष्ठान प्रसिद्ध ब्रह्म है, ऐसा एक नित्य मुक्त है, यह निश्चय करो ॥५॥

सबाह्याभ्यन्तरोऽसि त्वं शिवः सर्वत्र सर्वदा। इतस्ततः कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत्
वदन्ति श्रुतयः सर्वा निर्गुणं शुद्धमव्ययम्। अशरीरं समं तत्त्वं तन्मां विद्धि न संशयः॥६
साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम्। एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसंभव ॥ ७ ॥
एकमेव समंतत्त्वं वदन्ति हि विपश्चितः। रागत्यागात्पुनश्चित्तमेकानेकं न विद्यते ॥८॥
अनात्मरूपं च कथं समाधिरात्मस्वरूपं च कथं समाधिः ॥९॥
अस्तीति नास्तीति कथं समाधि, मोक्षस्वरूप यदि सर्वमेकम् ॥१०॥

बाहर भीतर रम रहा, तू शिव व्यापक रूप। इधर उधर क्यों भटकता, चित्तपिशाच स्वरूप॥
शास्त्र वेद सब भाषते, निर्गुण शुद्ध अनाश। देह रहित सम रूप है, नहिं संशय अविनाश॥
साकारहि मिथ्या लखो, निराकार है सत्य। यही उपदेश मनन कर, जानो जन्म असत्य॥
है शिव एक समान नित, चित्त अनेकता दूर। पंडित जानें एक ही, राग भये सब धूर॥
समाधि अनातम में नहीं, आतम में भो नाहि। जो सब एक स्वरूप है, मोक्ष समाधी काहि॥

प्रश्न–यह चित्त किस विचार से परम तत्व (शिव) को निश्चय करके समाधि आदि सब को मिथ्या जान अद्वैत आत्मा में विश्राम पावे।

उत्तर–शिव (कल्याण स्वरूप) आत्मा सब जगत् के भीतर व बाहर पूर्ण है, हे अनजान चित्त तू दशों दशा में तृष्णाकर पिशाच की नाई क्यों भटकता है ॥६॥

वेद, वेदान्त आदि मोक्ष शास्त्र ब्रह्मात्मा को निर्गुण, शुद्ध अविनाशी वर्णन करते हैं अर्थात् देह आदि जगत् से अतीत समान रूप व्यापक आत्मा है॥७॥

आकार वाले सब पदार्थ मिथ्या हैं और निराकार नित्य (सत्य) है, यथार्थ ब्रह्मवेत्ता को यही उपदेश स्वीकार करके आत्मा को अजन्मा जान ॥८

शिव तत्व एक रस (व्यापक) है ऐसा निश्चय करके चित्त से द्वैत (संसार) को दूर करके राग व भय आदि को निवृत्त कर, यह अनुभव पूर्व विद्वानों का है ॥९॥

अनात्म (असत्य) रूप दृश्य में समाधि नहीं बनती और सर्वात्मा में भी समाधि असंभव है, जब सब कल्पित पदार्थ वास्तव से अद्वैत आत्मा (अपना स्वरूप) हैं तो समाधि व मोक्ष आदि की कल्पना मिथ्या है किन्तु सर्वत्र व्यापक चैतन्य आनन्द घन है ॥१०॥

विशुद्धोऽसि समं तत्त्वं विदेहस्त्वमजोऽव्ययः। जानामीह न जानामीत्यात्मानं मन्यसे कथं॥११
घटे भिन्ने घटाकाशं सुलीनं भेदवर्जितम्। शिवेन मनसा शुद्धो न भेदः प्रतिभाति मे॥१२
मायामाया कथं तात छायाछाया न विद्यते। तत्त्वमेकमिदं सर्वं व्योमाकारं निरंजनम्॥१३
न बद्धो वै न मुक्तोऽहं न चाहं ब्रह्मणः पृथक्। न कर्ता न च भोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जितः॥१४
नैव बोधो न चाबोधो न बोधाबोध एव च। यस्येदृशः सदा बोधः स बोधो नान्यथा भवेत्॥१५

शुद्ध आत्म है तत्त्व सम, देह जन्म सेहीन। मैं आतम जानत नहीं, अरु जानूं किम चीन॥
घट फूटे आकाश विभु, भेद नाश हो लीन। शुद्धहृदय जब होइगा, शिव तत्त्व सब बीन॥
माया, छाया नहिं बने, है विपरीत स्वरूप। एक तत्त्व पूरण सदा, माय हीन नभ रूप॥
बन्ध मुक्ति मेरे नहीं, ब्रह्मरूप हूँ एक। कर्त्ता भुक्ता है नहीं, पूर्ण अपूर्ण सब छेक॥
बोध अबोधहि नहीं कुछ, बोधाबोध असार। जिसको है यह ज्ञान दृढ़, बोध वही लखि सार॥

प्रश्न—गुरु का उपदेश व ज्ञान और समाधि सत्य हैं या कल्पित रूप, निश्चय करके मुझे समझाइये।

उत्तर--शुद्ध परम तत्त्व, निराकार, अजन्मा और अविनाशी ब्रह्म तुम हो, इसलिये आत्मा को जानता हूँ अथवा नहीं, यह कथन सम्भव नहीं बल्कि समाधि से लेकर मोक्ष तक सब शब्द, अर्थ आरोपित हैं, तथा नित्य मुक्त आत्म एक सत्य है ॥११॥

घट टूट जाने पर घटाकाश जैसे महाकाश में मिल जाता है तैसे जब मन शुद्ध हो तब भेद भ्रमके दूर हुए जीव केवल शिव स्वरूप है, उस दशा में वेद, लोक, देव, असुर यज्ञ, धूम मार्ग ज्योति मार्ग व वर्णाश्रम तथा ज्ञान, अज्ञान, बन्ध, मोक्ष सत्य नहीं किन्तु एक शिव तत्त्व सब में सार है, यह सिद्धान्त अपेल है ॥१२॥

माया व उसका प्रतिबिंब और इनका होना व अभाव सत्य नहीं केवल अद्वैत तत्त्व आकाश के तुल्य माया से अतीत है ॥१३॥

मैं न बद्ध हूँ व न मुक्त हूं अर्थात् कर्त्ता, भुक्ता आदि सबसे परे अद्वैत शुद्ध स्वरूप सर्वात्मा हूँ, यह निश्चय निर्वाण प्रद है ॥१४॥

ज्ञान व अज्ञान दोनों नहीं, जिसके हृदय में यह निश्चय है कि उपदेश, विक्षेप, बन्ध, मोक्ष, समाधि यह सत्य नहीं किन्तु शुद्ध अद्वैत ब्रह्मात्मा सत्य है। इस निष्ठा वाला विद्वान् कृतार्थ होता है ॥१५॥

तीर्थे चान्त्यजगेहे वा नष्टस्मृतिरपित्यजन् । समकाले तनुँ मुक्तः कैवल्यव्यापको भवेत् ॥१६
धर्मार्थकाममोक्षांश्च द्विपदादिचराचरम् । मन्यन्ते योगिनः सर्वे मरीचि जलसन्निभम् ॥१७
अहमेव परं यस्मात्सारासारतरं शिवम् । गमागमविनिर्मुक्तं निर्विकल्पं निराकुलम् ॥१८
नासा निरोधो न च दृष्टिरासनं । बोधोऽप्यबोधोऽपि न यत्र भासते ॥
नाडीप्रचारोऽपि न यत्र किंचित् । तमीशमात्मन्मुपैति शाश्वतम् ॥ १६॥
संसारसंततिलता न च मे कदाचित् । संतोपसंततिसुखे न च मे कदाचित् ॥
अज्ञानवन्धनमिदं न च मे कदाचिज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२०

तीर्थ मरे चौंडाल घर, ब्रह्म ज्ञान वृति भूल । बोध समय ही मुक्त हो, पावे नहीं जग शूल ॥
धर्म अर्थ अरु मोक्ष सुख, योगी जाने झूंठ। मरूभूमि के जल तुल्य, त्यागे जग सब झूंठ॥
सबसे परेहूँ सार शिव, पुनि विकार से रहित। नित्य मुक्त सब भेद विन, रहूँ आनन्द सहित॥
जिसमें नासा रोक नहिं, दृष्टासन नहि बोध। नाड़ीका संचार किम, शिव ईश्वर को शोध ॥
नहीं लता संसार कुछ, संतोष सुखसे रहित। अज्ञान वन्ध मेरे नहीं, ज्ञानामृत रस सहित ॥

प्रश्न--लोक में प्रसिद्ध है कि (अन्त मति सो गति) क्या ज्ञानी के लिये यह नियम सत्य है वा नहीं, यह अर्थ निर्णय कर कहिये ।

उत्तर--ब्रह्मवेत्ता देह के पात हुए निर्गुण ब्रह्म में लीन होता है, अर्थात् विद्वान् चांडाल के गृह में प्राण त्यागे वा तीर्थ पर, तथा स्वरूप दृष्टि को भूलकर हाहाकार करते देह को त्यागे, वह ब्रह्मज्ञान के होते ही मुक्त स्वरूप वेद, वेदान्त में वर्णन किया है ॥१६॥

धर्म, अर्थ, काम, मुक्ति इत्यादि शब्दार्थ वास्तविक दृष्टि से असत्य हैं जैसे मरु भूमि में कल्पित रूप जल भासित हुआ असत्य है तैसे बन्ध से मुक्ति पर्य्यंत सर्व मिथ्या हैं ॥१७॥

लोकान्तर में गमनागमन से रहित तथा भेद, संशय से मुक्त शिव परमानन्द ब्रह्म में हूँ, अतः मेरे में शास्त्रों के विधि, निपेद्ध दोनों सत्य नहीं ॥१८॥

सर्वात्मा में वायु (प्राणों)का निरोध व नासाग्र दृष्टि, सिद्ध आदि आसन तथा ध्यान, धारणा, समाधि और अज्ञान, ज्ञान सत्य नहीं तब नाड़ियों के वेग को विद्वान् सत्यकैसेमानसकता है किन्तु सबको सत्तादेनेवालाएकशिव है॥१६॥

संसार का निस्तार व संतोप जनित सुख तथा ज्ञान व बन्ध मोक्ष वास्तव से सत्य नहीं किन्तु ज्ञानामृत आकाश के तुल्य एक रस पूर्ण में हूँ । इस निश्चय के प्रभाव से विद्वान् जीवित काल में ही मुक्त स्वरूप है, इसी को जीवन्मुक्ति पद वर्णन करते हैं ॥२०॥

स्थानत्रयं यदि च नेति कथं तुरीयं, कालत्रयं यदि च नेति कथंदिशश्च ॥
शान्तं पदं हि परमं परमार्थतत्त्वं, ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२१॥
मुञ्च मुञ्च हि संसारं त्यागं मुञ्च हि सर्वथा, त्यागात्याग विषंशुद्धममृतं सहजं ध्रुवम् ॥२२॥
स्वप्नः प्रबोधो न च योगमुद्रा, नक्तं दिवा वापि न मे कदाचित् ।
अतुर्यतुर्यं च कथं वदामि, स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥२३॥
संविद्धि मां सर्व समाधियुक्तं, संविद्धि मां लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम् ।
योगं वियोगं च कथं वदामि, स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥२४॥
इह सर्वतमं खलु जीव इति, इह सर्वं निरन्तर जीव इति ।
इह केवलनिश्चलजीव इति, किमु रोदिषि मानस सर्वसमं॥२५॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति पुनि, आतम त्रिपुटि अतीत। तुर्या तीनों काल नहिं, शान्त तत्त्व है मीत॥
तजो संसार सत्यता, अहं गर्व भी छोड़। त्याग अत्याग तुल्य विष, ज्ञानामृत मन जोड़॥
स्वप्न प्रबोधहि नहीं सम, योग मुद्रा किम भेद। तुर्यातुर्य न कहि सकें, है निर्वाण अभेद॥
नित्य समाधी युक्त हूँ, लक्ष्य विलखि सम रूप। योग विक्षेप कहूँ किस, मैं आनन्द स्वरूप॥
सब में व्यापक एक रस, केवल चैतन ज्ञान। द्वन्द भावना त्याग दे, क्यों रोवें मन स्वान॥

प्रश्न—चारों अवस्था रूप प्रपंच को मिथ्या कैसे जानें वह कहिये।

उत्तर—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था और तुर्य चतुर्थ मात्रा तथा प्रमाता, प्रमाण प्रमेय, आदि त्रिपुटि तीनों कालों सहित भासती हुई भी स्वप्न सृष्टि के समान मिथ्या हैं, और मैं शान्त स्वरूप तत्त्व हूँ यह निश्चय मुक्तिप्रद है॥२१॥

सब संसार के प्रतीत होते हुये भी इसमें सत्यता को त्यागना चाहिये बल्कि त्याग का अभिमान करना भी अनुचित है, यह त्याग व अत्याग दोनों भ्रान्ती दशा तक हैं, इनको मिथ्या व विष तुल्य दुःखदाई जानकर अमृत रूप आत्मा को निश्चय करो॥२२॥

जाग्रत, स्वप्न आदि तेरे धर्म नहीं व योग की मुद्रा और तुर्य, तुर्यातीत शब्द भी उपदेश तलक हैं वास्तव से केवल निर्वाण स्वरूप अद्वैत तत्त्व है यह निश्चय विज्ञान कहलाता है॥२३॥

अद्वैतात्मा का निश्चय रूप मेरी सदा समाधी है, महावाक्य कर लक्ष्य और वास्तव से अलक्ष्य तथा विक्षेप आदि से अतीत नित्य अद्वैत अच्युत मैंहूँ॥२४॥

सब जगत् में पूर्ण (एक रस) चैतन्य स्वरूप ब्रह्मात्मा है, उसमें स्थूल सूक्ष्म व कारण, कार्य और भाव, अभाव रूप द्वैत का अत्यंताभाव है इसलिये सबको मिथ्या जान कर अपने वास्तव रूप शिव तत्व में स्थित हो॥२५॥

सुख दुःख विवर्जित सर्व समं, इह शोक विशोक परं।
गुरु शिष्य विवर्जित तत्त्वपरं, किमुरोदिपि मानस सर्वसमं॥२६
मन एव निरन्तरसर्वगतं, ह्यविशाल विशाल विहीन परम्।
मन एव निरन्तरसर्वशिवं, मनसापि कथं वचसा च कथम्॥२७
यदि भेदक भेद निराकरणं, यदि वेदक वेद्य निराकरणम्।
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवं, तृतीयं च कथं चरमंचकथम्॥२८
प्रकृतिः पुरुपो नहि भेद इति, कारण कार्य विभेद इति।
यदि चैक निरन्तर सर्वशिवं, पुरुपापुरुपं च कथं वदति॥२६॥
ननु आश्रम वर्ण विहीन परं, ननु कारण कर्तृ विहीन परं।
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवं, मविनष्टविनष्टमतिश्च कथं॥३०॥

सुख दुःखसे रहितसम, शोक विशोक विहीन। गुरु शिष्य तज भावना, परम तत्त्वकोचीन॥
जगत सभी है मनोमय, लघु दीरघभी होइ। विचार करके शिव वही, अर्चे पूजे कोइ॥
भेद अभेदहि नहि बने, वैदिक वेद अभाव। एक नित्य शिव रूप है, तुर्य शब्द किस भाव॥
पुरुप प्रकृति भेद नहि, कारण कार्य असत्य। सबही अद्वै शिव लखि, पुरुप नारि किम सत्य
वर्ण आश्रमों से परे, तत्व द्वन्द से हीन। कारज कारण है नहीं, शब्द रहित शिव चीन॥

प्रश्न—सुख, दुःख आदि संयुक्त जगत् प्रत्यक्ष भासता है वह झूठा कैसे जाना जाय यह अर्थ मेरे बोध की वृद्धि के लिये स्पष्ट वर्णन की कीजिये?

उत्तर—मेरे स्वरूप में सुख, दुःख व शोक, अशोक, आदि द्वन्द सत्य नहीं बल्कि गुरु, शिष्य संप्रदाय भी आरोप दशा में हैं और सब शब्द अर्थों से अतीत शिव (तत्व) एक है यह निश्चय विज्ञान कहलाता है॥२६॥

प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाला सम्पूर्ण जगत् केवल मन ने रचा है अर्थात् परिच्छिन्नता सहित संसार मनोमात्र होने से कल्पित है, विचार से देखें तो शिव तत्व का कथन व उसका ज्ञान सात्विक मन का रूप है। देव का अर्चन व पूजन आदि व्यवहार कैसे सत्य हो॥२७॥

ब्रह्मात्मा में भेद, अभेद दोनों नहीं किन्तु वेद व वैदिक कर्मों का अभाव है जो वास्तविक एक शिव है उसको तुर्य भी नहीं कह सकता है॥२८॥

परमार्थ दृष्टि से पुरुप, प्रकृति एक है और कारण, कार्य कल्पना सत्य नहीं किंतु सब शब्द, अर्थों से अतीत एक शिव स्थित है॥२६॥

वर्ण, आश्रम व उनके व्यवहारों से अतीत व द्वन्दों से वर्जित तत्व एक है अर्थात् कारण, कार्य यावत् जगत प्रतीत होता है वह सब स्वप्न के समान असत्य है और ब्रह्मात्मा सत्य है उसको वेद वादी परमात्मा, शिव इत्यादि नामों से वर्णन करते हैं॥३०॥

कथमिह देह विदेह विचारः, कथमिह राग विराग विचारः।
निर्मल निश्चल गगनाकारं, स्वयमिह तत्वं सहजाकारम् ॥३१॥
गगनाकार निरन्तर हंसस्तत्व विशुद्ध निरञ्जन हंसः।
एवं कथमिह भिन्न विभिन्नं, ब न्ध विबन्ध विकार विभिन्नम्॥३२
बोध विबोधैः सततं युक्तो, द्वैताद्वैतैः कथमिह मुक्तः।
सहजो विरजाः कथमिह योगी, शुद्ध निरञ्जनसमरसभोगी ॥३३
कामैरहतधीर्दान्तोमृदुःशुचिरकिंचनः। अनीहोमितभुक्शान्तः स्थिरोमच्छरणोमुनिः॥३४
कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्। सत्य सारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥३५

ज्ञान दशा में देह रह, विदेह भेद असत्य। राग वैराग्य भी झूँठ है, एक तत्व लखि सत्य॥
सम आकाशहि तत्त्व वह, निर्मल माया हीन। भेद अभेदरु मोक्ष बध, शब्द सत्य नहिंचीन॥
बोध अबोधहि मुक्त पुनि, द्वैत अद्वैत जोइ। शुद्ध ज्ञान सम्भव नहीं, योगी सम रस होइ॥
अकाम इन्द्रिय जीत हो, मृदु शान्त मलरहित। अल्पाहारी शुद्ध चित्त, मुनीश धारणा कहत
कृपालू अद्रोही नित, सब हितैषी सम जान। रहित उद्वेग सार लखि, सहन शील मुनि ज्ञान

प्रश्न—जीवन्मुक्ति व विदेह कैवल्य का भेद जानना चाहताहूँ वह कहिये।

उत्तर—ब्रह्मज्ञान को पाकर जीवन्मुक्त होता है और विदेह कैवल्य में देह आदि जगत् का कुछ भेद प्रतीत नहीं होता, उस दशा में राग, वैराग्य आदि नहीं रहते किन्तु अद्वैत रूप एक शिव तत्त्व होता है ॥३१।

वह शिव तत्त्व आकाश के सदृश निर्मल है और माया आदि उपाधि भी उसमें नहीं किन्तु निर्मल स्वरूप भेद, अभेद कल्पना से शून्य तथा मुक्ति आदि शब्दों से परे केवल सत्य स्वरूप है ॥३२॥

ज्ञान व अज्ञान व द्वैत व अद्वैत यह सब शब्द शुद्ध ज्ञान स्वरूप में असंभव हैं, यानी राज्ययोगी (ज्ञानी ब्रह्म में एकत्र होता है, उसमें भेद भावना नहीं रहती ॥३३॥

जगत् के सब पदार्थों से उदासीन और इन्द्रिय व मन को जीतने वाला कोमल, स्वच्छ हृदय, उद्वेग रहित, शान्त चित्त, अल्प बोलने वाला और आहार, व्यवहार शुद्ध करने वाला विद्वान् मुनि कहा जाता है ॥३४॥

सब पर दयाभाव, द्रोह कपट से रहित, सब का हितैषी, समदृष्टि और भय क्रोध आदि तामस गुणों से अतीत तथा तत्त्व को यथार्थ जानने वाला मुनि अधिकारियों का कल्याण कर सकता है। सब कथन का स्पष्ट भाव यह है कि जो स्वयं धारणा सम्पन्न और सर्वत्र कल्याण की इच्छा संयुक्त है ऐसा विद्वान् शास्त्रों व लोक में प्रशंसनीय और आप सब आनन्द की सीमा शिवपद में स्थित होता है, इससे विपरीत दशा शोचनीय है ॥३५॥

जीवन्मुक्ति गीता विभास (२६)।

जीवन्मुक्तोचयामुक्तिः सामुक्तिः पिण्डपातने। यामुक्तिः पिण्डपातेन सामुक्तिः शुनिशूकरे॥१
जीवः शिवः सर्वमेव भूतेष्वे वंव्यवस्थितः। एवमेवाभिपश्यन्ती जीवन्मुक्तः सउच्यते॥२
एवंब्रह्मजगत्सर्वं मखिलम्भासतेरविः । संस्थितंसर्वभूतानाञ्जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥३
एकधावहुधाचैव दृश्यतेजलचन्द्रवत् । आत्मज्ञानीतथैवैको जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥४
सर्वभूतेस्थितंब्रह्म भेदाभेदौनविद्यते । एकमेवाभिपश्यन्ती जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥५

जीव मुक्ति सब होयँगे, देह छुटे जड़ सोइ। कूकर पत्थर यत्न विन, मुक्ति सभी की होइ॥
ईश जीव सब जगत मय, पूरण है इक रूप। ऐसा निश्चय होइ जिस, जीवन्मुक्ति स्वरूप॥
ब्रह्म जगत हो भासता, सब प्रकाशक जोइ। लखि ब्रह्मातम बोध दृढ़, जीवन्मुक्ता सोइ॥
चंद्र प्रतिबिंब मध्य जल, वहुत रूप हो भास। निर्मल आतमरूप लखि, जीवन्मुक्त प्रकाश॥
सब भूतों में ब्रह्म इक, भेद अभेद विहीन। दृढ़ निश्चय संयुक्त है, जीवन्मुक्ति प्रवीन॥

प्रश्न—मत, मतान्तरों वाले अनेक प्रकार मुक्ति का स्वरूप जानते हैं, जो जीवन्मुक्ति वेद, वेदान्त के अनुसार हो वह कृपा करके वर्णन कीजिये।

देह के पात व जड़ता होने पर मुक्ति होती माने तो कूकर व पत्थर, वृक्ष आदि सबकी मुक्ति हो जानी चाहिये। इस प्रकार पौरुष (प्रयत्न) सभी निष्फल होंगे। इसलिये मुक्ति का यथार्थ स्वरूप भगवान् दत्तात्रेय जी ने जैसा वर्णन किया है, वह इस विभास में लिखते हैं।

यथा प्रारब्ध क्रियाओं को करते हुए ब्रह्मात्मा को वेदान्त के विचार द्वारा नित्य मुक्त जान लेने पर जीवत् मुक्ति (जीवन्मुक्ति) प्राप्त होती है और देहांत में विदेह कैवल्य होती है ॥१॥

जीव, जगत, ईश्वर में पूर्ण एक ब्रह्म है यह निश्चय जिसको दृढ़ होता है वह जीवन्मुक्त कहाता है अर्थात् तत्वज्ञान ही जीवन्मुक्त है ॥२॥

अज्ञान से अद्वैत ब्रह्म ही भूत, भौतिक जगत् हो भासता है, वह ब्रह्म ही सब का प्रकाशक है ऐसा ब्रह्मबोध वाला जीवन्मुक्त कहाता है ॥३॥

जैसे चन्द्रमा अनेक जल पात्रों में प्रतिबिंबित होता है तैसे ब्रह्मात्मा को सब जगत् में पूर्ण जानने वाला जीवन्मुक्त कहलाता है ॥४॥

भूत, भौतिक सब संसार में ब्रह्म अनस्यूत है और भेद, अभेद की कल्पना मिथ्या है, ऐसा जान लेने पर जीवन्मुक्त कहाता है ॥५॥

तत्वंक्षेत्रंव्योमातीतं अहं क्षेत्रज्ञउच्यते । अहङ्कर्ताअहम्भोक्ता जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥६
कर्मेन्द्रियपरित्यागी ध्यानवर्जितचेतसः । आत्मज्ञानीतथैवेको जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥७
शरीरङ्केवलङ्कर्म शोकमोहादिवर्जितम् । शुभाशुभपरित्यागी जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥८
कर्मसर्वत्रआदिष्ठं वजानामिचकिञ्चनम् । कर्मब्रह्मविजानाती जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥९
चिन्मयंव्यापितंसर्वं माकाशञ्जगदीश्वरम् । संहितंसर्वभूतानाञ्जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥१०
अनादिवर्तीभूतानाम् जीवःशिवोनहन्यते । निर्वैरः सर्व भूतानांजीवन्मुक्तः सउच्यते ॥११

पंच तत्त्व है क्षेत्र सब, एक क्षेत्रज्ञ सार। कर्त्ता भुक्ता मैं सभी, जीवन्मुक्त अपार ॥
वाह्य इन्द्रियाँ वश करीं,अनुष्ठान तज ध्यान। एक आत्म अद्वैत लखि, जीवन्मुक्त प्रमान॥
यथा प्रारब्ध कर्म कर,शोक मोह विसराय। शुभाशुभ विपर्य्य तजि, जीवन्मुक्त कहाय ॥
शास्त्र कर्म को त्याग उर, क्रिया ब्रह्ममय जान। जीवन्मुक्ता जानिये, हो निश्चय दृढ़ ज्ञान॥
ज्ञानरूप आकाश सम, जग साक्षी नित ध्याय । ब्रह्मात्म को जान के, जीवन्मुक्त बताय ॥
शिव मय प्राणी वर्तता, सम दृष्टी निर्वैर। सब जीवहि सम देखता, जीवन्मुक्ता हेर ॥

प्रश्न—जीवन्मुक्तिं व ब्रह्मज्ञान में कुछ भेद अवश्य होना चाहिये।

उत्तर—आकाश आदि महाभूत व तिसका कार्य देह आदि जगत् क्षेत्र रूप है और मैं ब्रह्म क्षेत्रज्ञ हूँ, तथा सब सृष्टि का कर्त्ता, धरता भी मैं हूँ, इस निश्चय संयुक्त विद्वान ही जीवन्मुक्त कहलाता है। अर्थात् ज्ञान व जीवन्मुक्ति में कुछ भेद नहीं ॥६॥

वाह्य इन्द्रियों को बाध(वश) करके, ध्यान व अनुष्ठान को भी मिथ्या जान कर आत्मा को अद्वैत निश्चय करने वाला जीवन्मुक्त है ॥७॥

तीव्रतर प्रारब्ध के अनुसार यज्ञ, युद्ध आदि क्रियाओं को करता हुआ अचर निश्चय से शोक, मोह और शुभाशुभ दृष्टि सहित जीवन्मुक्त कहाता है अर्थात् ईश्वर सृष्टि के व्यवहार न तो त्यागे जा सकते हैं और न त्यागने से कुछ फल होता है ॥८॥

शास्त्रीय कर्मों को हृदय से त्याग कर सब क्रियाओं को एक ब्रह्म अनुभव करने वाले को जीवन्मुक्त कहना चाहिये ॥९॥

सब संसार का प्रकाशक चैतन्यरूप ब्रह्मात्मा है ऐसे निश्चय युक्त विद्वान् को आगम, निगम जीवन्मुक्त कहते हैं ॥१०॥

शिवरूप जो जीव है वही त्रिलेवश संसार होता है इस निर्वैर आत्म दृष्टि से एक (शिव) जानने वाला जीवन्मुक्त कहाता है ॥११॥

आत्मागुरुस्त्वं विश्वं च चिदाकाशोनलिप्यते। गतागतं द्वयोर्नास्ति जीवन्मुक्तः सउच्यते॥१२
गर्भेध्यानेनपश्यन्ति ज्ञानिनांमनउच्यते। सोहंमनोविलीयन्ते जीवन्मुक्तः सउच्यते॥१३
ऊर्ध्वं ध्यानेनपश्यन्ति विज्ञानंमनउच्यते। शुन्यंलयञ्चविलयं जीवन्मुक्तः सउच्यते॥१४
अभ्यासेरमतेनित्यं मनोध्यानलयङ्गतं। बन्धमोक्षद्वयंनास्ती जीवन्मुक्तः सउच्यते॥१५
एकाकीरमतेनित्यं स्वभावगुणवर्जितम्। ब्रह्मज्ञानरसास्वादो जीवन्मुक्तः सउच्यते॥१६
हृदिध्यानेनपश्यन्ती प्रकाशंकुतयतेमनः। सोहंहंसेतिपश्यंती जीवन्मुक्तः सउच्यते॥१७

चिद्मय गुरु सब आतमा, जग पोपे निर्लेप। जगत आतम नहिं भेद कुछ, जीवन्मुक्त अलेप॥
अन्तर आतम दृष्टिकर, सो मैं हूँ दृढ़ भाव। अनुभव द्वारा चित्त लय, जीवन्मुक्त स्वभाव॥
नित्य समाधी युक्त है, चित्त ब्रह्म में लीन। बोध एकता होइ दृढ़, जीवन्मुक्ता चीन॥
सदा ध्यान में लीन मन, एक दृष्टि उर जान। बन्ध मोक्ष नहिं भावना, जीवन्मुक्त कहान॥
असंगस्वभाव जान नित, त्रयगुण मिथ्या चीन। हृदय स्वाद नित ब्रह्मका, जीवनमुक्त प्रवीन॥
प्रकाश जाने हृदय में, आत्म चैतन्य एक। निश्चय दृढ़ धारण करें जीवन्मुक्त अनेक॥

प्रश्न—मेरा संशय दूर करने के लिये जीवन्मुक्ती का स्वरूप स्पष्ट कहिये।

उत्तर—चैतन्य स्वरूप निश्चय होने से जीवन्मुक्त सर्व का गुरु है, आत्म रूप हुआ सब जगत् को पालने वाला हृदय से भेद दृष्टि को त्याग जीवन व्यवहार करता विद्वान् सदा असंग मुक्त होता है इसीलिये जीवन्मुक्त कहाता है॥१२॥

आत्म भावना कर मैं, तू, सो यह सब शब्द, अर्थ एक ब्रह्म है इस दृष्टि कर चित्त को अद्वैत रूप जानने वाला जीवन्मुक्त कहलाता है॥१३॥

ज्ञानरूप समाधीयुक्त विद्वान् बोध द्वारा भेद कल्पना को त्यागकर ऐक्य ब्रह्म निश्चय युक्त ज्ञानी को ही जीवन्मुक्त कहना चाहिये॥१४॥

सदा अद्वैत निश्चय में स्थित व बन्ध, मोक्ष कल्पना से रहित सब जगत को बाध द्वारा कल्याणमय देखने वाला जीवन्मुक्त कहता है॥१५॥

वास्तव दृष्टि से नित्य असंग हुआ, तीनों गुणों को मिथ्या जान ब्रह्मात्म निश्चय से एकता जानने वाले को जीवन्मुक्त कहते हैं॥१६॥

सबके प्रकाशक आत्म निश्चय सहित व सम्पूर्ण विपर्य्य से रहित चैतन्य स्वरूप को दृढ़ अनुभव करके यथा प्रारब्ध देह यात्रा करके वाला विद्वान जीवन्मुक्त समझना चाहिये यह सब वेद वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है॥१७

शिवशक्तिसमात्मानो पिण्डब्रह्माण्डमेवचः। चिदाकाशंहृदंमोहं जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥१८
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीयावस्थितंसदा। सोहम्मनोविलीयेत जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥१६
सोहंस्थितंज्ञानमिदं सूत्रेपुमणितुत्वरम्। सोहंब्रह्मनिराकारं जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥२०
मनएवमनुष्याणाम्भेदाभेदस्य कारणम्। विकल्पनैवसङ्कल्पं जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥२१
मनएवविदुःप्राज्ञासिद्धसिद्धान्तएवच। सदादृढन्तदा मोक्षो जीवन्मुक्तः सउच्यते ॥२२
योगाभ्यासीमनःश्रेष्ठा अन्तस्त्यागीवहिर्जडः अन्तस्त्यागीवहिस्त्यागी जीवन्मुक्तः सउच्यते

शिव शक्ती की एकता, देह ब्रह्मण्ड अभेद। मोह भ्रान्ति सब हृदय तज, जीवन्मुक्त वेद ॥
नित अभ्यास सोहं किया, तीन अवस्था बाध। त्यागी माया तुर्य लखि, जीवन्मुक्ता साध ॥
सोई अद्वैत ज्ञान नित, मणियों में सम सूत। जीवब्रह्म की एकता, मुक्त जान अवधूत ॥
भेद अभेदहि हेतु नहिं, ऐसा निश्चय सोइ। सब जग आतम जानता, जीवन्मुक्ता सोइ ॥
विद्वानों का भाव यह, चित्त विश्व हो जाय। ऐसा अनुभव हृदय दृढ़, जीवन्मुक्त कहाय ॥
सात्त्विक योगी श्रेष्ठ मन, निश्चय जान अरूप। बाहर भीतर त्याग सब, जीवन्मुक्त स्वरूप ॥

प्रश्न—जीवन्मुक्त की अन्तर दृष्टि(निश्चय)कैसे होती है वह वर्णन कीजिए।

उत्तर—हृदय में शिव व शक्ति को और देह, ब्रमांड को एक देखता हुआ अज्ञान को त्याग कर अद्वैत, ब्रह्मात्मनिष्ठायुक्त तीव्रतर प्रारब्ध के अनुसार क्रियाओं को करता निश्चय से सदा असंग हुआ ज्ञानी जीवन्मुक्ति कहाता है यही उसकी अन्तर दृष्टि है ॥१८॥

सो ब्रह्म में हूँ ऐसा चिंतन करतेहुएजाग्रतआदितीनोंअवस्थाओंकोमिथ्या जानकरमाया की कल्पना रहित अद्वैतदृष्टि विद्वान् को जीवन्मुक्तकहते हैं॥१६॥

नित्य सोऽहम (जीव ब्रह्म का अभेद) जानकर सबमें अनुस्यूत आत्मा को दृढ़ निश्चय करके विद्वान् जीवन्मुक्त पद में स्थित होता है ॥२०॥

ब्रह्मात्मा भेद, अभेद व कारण, कार्य की कल्पना से रहित सब जगत् को अद्वैत चैतन्य जानने वाला ब्रह्मवेत्ता जीवन्मुक्त कहाता है ॥२१॥

जीवन्मुक्त विद्वानों का सदा यही अनुभव होता है कि चित्त(अहंकार)ही सबजगत्‌रूपहोताहैऔरभेदकल्पनामिथ्याहैयहअन्तरदृष्टिहीजीवन्मुक्तिहै॥२२॥

राजयोगी (ज्ञानी)का हृदय दुर्भाव (अज्ञान)से रहित हुआ सबको ब्रह्मात्म जानता है और सब भेद भावना से मुक्त ऐक्य दृष्टि विद्वान् जीवन्मुक्ति कहाता है अर्थात् ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता वाला जीवन्मुक्त कहलाता है यह सिद्धान्त अपेल है ॥२३॥

अष्टावक्रगीता सार विभास (३०)।

देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक। बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तं निःकृत्य सुखी भव ॥१
यथा प्रकाशयाम्येको देहमेनं तथा जगत्। अतो मम जगत्सर्वमथवा न च किञ्चन ॥२
ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं नास्ति वास्तवम्। अज्ञानाद्भाति यत्रेदं सोऽहमस्मि निरञ्जनः॥३
सशरीरमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चितम्। शुद्धचिन्मात्र आत्मा च तत्कस्मिन्कल्पनाधुना
विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरङ्गा इव सागरे। सोऽहमस्मीति विज्ञाय किं दीन इव धावसि ॥५

देहअभिमानहि पाशकर, तू बन्धा चिरकाल। मैं चेतन दृढ़ ज्ञान असि, काटसुखीहो हाल ॥
प्रकाश जैसे करूं वपु, तैसे सभी प्रपंच। अथवा मेरे में जगत्, हुआ नहीं यह किंच ॥
ज्ञानज्ञेय ज्ञाता सभी, तीन काल नहिं होइ। भासित है अज्ञान से, बिन माया निज जोइ ॥
देहसहित सब जगत नहि, यह निश्चय दृढ़ धार। शुद्ध चिन्मात्र आत्मा, भेद कल्पना टार ॥
सागर माहीं लहर जिम, प्रतीत होती जान। तैसे आतम के विषे, प्रपंच मिथ्या मान ॥

प्रश्न—संसार आशक्ती रूप फांसी महान् दुस्तरहै इसको मैं कैसे तरूंगा?

उत्तर—हे तात! देह में अभिमान करना ही दृढ़ बन्धन है इसमें तू अनादि काल से बंध रहा है मैं देह नहीं किन्तु चैतन्य आत्मा हूँ इस ज्ञानरूप तलवार से देह अभिमान को काट कर अभी सुखी हो यह उपदेशमुनि अष्टावक्र जी राजा जनक को सुनाते हैं ॥१॥

जिस प्रकार मैं इस देह को प्रकाशता हूँ तैसे सब जगत् का प्रकाशक भी मैं हूँ अथवा मेरे स्वरूप में प्रपंच तीनों कालों में सत्य नहीं, इसलिये मेरे में प्रकाशपना व दृश्य में प्रकाश्यता दोनों मिथ्या हैं अर्थात् इनका यह सम्बन्ध ज्ञाननिष्ठा तक है ॥२॥

ज्ञाता, ज्ञान,ज्ञेय रूप त्रिपुटि स्वप्न सृष्टि के तुल्य अज्ञान निद्रा से भासती है वास्तव से इसको सत्ता देने वाला मैं ब्रह्म माया से अतीत हूं अतः स्थूल, सूक्ष्म जगत् में सत्यता नहीं इस निश्चय के प्रभाव से ज्ञानी मुक्त स्वरूप है ॥३॥

स्थूल देह से लेकर सब जगत् असत्य है इस निश्चय से शुद्ध चैतन्यात्मा को जानकर सब भेद कल्पना को दूर से त्याग दो तब व्यवहार करते भी सदा मुक्त रहोगे ॥४॥

जैसे समुद्र में अनेक लहरें उत्पन्न व विलय होती हैं तैसे सब विश्व आत्मा में कल्पित है ऐसा अनुभव करके तू निर्विकार चैतन्यात्मामेंदृढ़निष्ठा कर तब देह यात्रा(व्यवहार)को करता भीजीवन्मुक्तपद में स्थितहोगा ॥५॥

आकाशवदनन्तोऽहं घटवत्प्राकृतं जगत्। इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहोलयः॥६॥
यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बन्धनं तदा। मत्वेति हेलया किञ्चिन्मा गृहाण विमुञ्चमा॥७॥
कृताकृते च द्वन्द्वानि कदा शान्तानि कस्य वा। एवं ज्ञात्वेह निर्वेदाद्भव त्यागपरोऽव्रती॥८॥
नानामतं महर्षीणाँ साधूना योगिनान्तथा॥दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नः को न शाम्यति मानवः॥९॥
कर्मानुष्ठानमज्ञानाद्यथैवोपरमस्तथा। बुद्ध्वा सम्यगिदं तत्त्वमेवमेवाहमास्थितः ॥१०॥

नभसम आतम अन्तविन,घटवत जड़ प्रपंचाधरो ज्ञान दृढ़ हियेमें,ग्रहण त्याग नहिं संच॥
जब अहंता हृदय नहीं, सभी मुक्त हूँ रूप। जो अहंता हो दृश्य में, होवे बन्ध स्वरूप॥
यह करना नहिं मैं करूं,द्वन्द होइ नहिं शांत। इन सबसे वैराग्य हो अन्तर त्यागे भ्रांति॥
मत अनेक ऋषि मुनिन के,नानाभेद बताय। इनसे भी वैराग्य कर,नित्य शांत तब पाय॥
दृढ़ कर्त्तव्यता भूलसे, कर्म त्याग अज्ञान। ऐसा जानो हिये में, तत्त्व धार निज ज्ञान॥

प्रश्न—किस धारणा कर द्वन्द रूप जगत् से अतीत हुआ मुमुक्षु जीवन्मुक्ति पद को पाता है।

उत्तर -आकाश के समान ब्रह्मात्मा अविनाशी चैतन्य स्वरूप है और सब प्रपंच घट आदि के समान जड़, विकारी है इस निश्चय से ग्रहण, त्याग बुद्धि को छोड़कर अद्वैत निर्धर्मक स्वरूप में कुछ बाधा नहीं रहती ॥६॥

जब हृदय से अहंकार दूर हो तब तू मुक्त है और जब तक देह अभिमान विद्यमान है तभी तलक बन्धन है ॥७॥

यह क्रिया मुझको करनी है अथवा यह कार्य में नहीं करूंगा यह द्वन्द किसी के कभी निवृत्त नहीं होते किन्तु जीवनकाल तक रहते हैं, इनके होते हुए हृदय (निश्चय) से अहंता व कर्तृत्व और सत्यता को त्याग कर निर्धर्मक रूप ब्रह्म (कैवल्यपद) में स्थिति होगी ॥८॥

अपने २ संस्कारों के अनुसार ऋषि, मुनि, योगी जनों के अनेक प्रकार के भाव (मत) और उपदेश होते हैं उनमें भेद बुद्धि को त्याग कर तत्त्व (सार) को जान कर तू सुखी हो ॥९॥

कर्त्ता बुद्धि कर अपने को कर्मों के करने वाला अथवा कर्म का त्यागी जानना यह सब दशा अज्ञानकर होती है इसलिये मुमुक्षुओं को यह उचित है कि यथा प्रारब्ध जैसा सुख, दुःख व हानि, लाभ प्राप्त हो उसमें संशय, विपर्य्य को त्याग और देह के संस्कार जानकर राज्यपालन, भिक्षावृत्ति आदि सब व्यवहार करते हुए स्वरूप में स्थित रहें यानी पतित प्रवाह से सब कुछ करते हुए चैतन्यात्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता जानकर आनन्दी हों ॥१०॥

सुखादिरूपानियमं भावे वालोक्य भूरिशः।शुभाशुभे विहायास्मादहमासे यथासुखम्॥११
रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनस्ते कदाचन। निर्विकल्पोऽसि बोधात्मा निर्विकारः सुखंचर॥१२
श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व नात्र मोहं कुरुष्व भोः।ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः॥१३
आयासात्सकलो दुःखी नैनं जानाति कश्चन।अनेनैवोपदेशेन धन्यःप्राप्नोति निर्वृतिम्॥१४
यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा। न च ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःखभागसौ॥१५

सुक्ख दुःखका नियमनहिं,यह निश्चय सबकाल।द्वन्दसभीको त्यागके,शुभाशुभको टाल॥
राग द्वेषादि धर्म सब, मनके जानों मीत। संशय धर्मों रहित निज,निर्विकार सुख नीत॥
कर श्रद्धा दृढ़ तात अब, मोह हृदयसे त्याग। ज्ञानरूप भगवान तुम, परे प्रकृती जाग॥
सभी दुःखी परिश्रमकर,नहिंजाने नर भ्रांत। धारे इस उपदेशको,धन्य जान सुखशांत॥
होइ गर्व जब मोक्ष का,देह ममता हो जान। दुखी अयोगी गर्वयुत, यह सब ही अज्ञान॥

प्रश्न—देह आदि के द्वन्द रूप जो कष्ट हैं उन से छुटकारा कैसे हो सकता है यह अनुग्रह से प्रदिपादन कीजिये।

उत्तर—यह नियम किसी काल व पदार्थ में नहीं कि सुख, दुःख आदि द्वन्द सदा बने रहेंगे, इनमें सत्यता व शुभाशुभ भेद कल्पना को त्यागकर अद्वैत पद में स्थित हुए को द्वन्द स्पर्श नहीं कर सकते हैं, किंतु विद्वान् इनसे विलक्षण अपने को असंग जानता है ॥११॥

राग, द्वेष, संकल्प, विकल्प और इच्छा, अनिच्छा तथा सुख, दुःख यह सब मन के धर्म हैं आत्मा सब धर्मों से अतीत व सम्पूर्ण भेद से रहित निर्विकार है ऐसा निश्चय होने पर सब बन्धन टूट जाते हैं ॥१२॥

हे तात! वेद, वेदान्त व सद्गुरु के वाक्यों में दृढ़ विश्वास करके मैं सर्व शक्ति चैतन्य प्रकृति से परे हूँ इस निष्ठाकर अज्ञान से होने वाले द्वन्दों से तू मुक्त होवेगा ॥१३॥

सभी मनुष्य विपर्य्य पूर्वक परिश्रम करके दुःख पाते हैं इस नियम को अज्ञानी मनुष्य नहीं जानते और विद्वान् इस रहस्य को निश्चय कर सदा निवृत्ति को धारण करता हुआ आनन्द पूर्वक स्थित होता है ॥१४॥

अधिक क्या लिखें जब हृदय में ज्ञान व मुक्ति पा जाने का भी अभिमान होता है तो देह आदि में ममता भी अवश्य होती है उस विपर्य्य वासना से दुःखी हुआ मनुष्य कल्याण से दूर रहता है इस लिये देह अभिमान को त्याग करना ही श्रेयस्कर है ॥१५॥

न मुक्तो विषयद्वेष्टा न वा विषयलोलुपः। असंसक्तमना नित्यं प्राप्ताप्राप्तमुपासते॥१६॥
समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः।शून्यचित्तो न जानाति कैवल्यमिव संस्थितः।१७
अर्जयित्वाखिलानर्थान् भोगानाप्नोति पुष्कलान्।न हि सर्वपरित्यागमन्तरेण सुखी भवेत्१८
दृष्टो येनात्मविक्षेपो निरोधं कुरुते त्वसौ।उदारस्तु न विक्षिप्तःसाध्याभावात्करोतिकिम्॥१९
यस्यान्तःस्यादहङ्कारो न करोति करोति सः।निरहङ्कारधीरेण न किञ्चिद्धि कृतं कृतम् ॥२०

विषयद्वेष अरु रागभी,दोइ मुक्तके नाहिं। मन आसक्ती त्यागनित,यथा प्राप्त सुखचाहिं ॥
सम समाधी हिताहित, सभी कल्पना रहित। निष्ठा केवल वस्तुमें,जीवन्मुक्ती लहित ॥
सब पदार्थहों संग्रह,भोग अधिकभी होइ। पर अन्तरके त्याग बिन,सुक्ख पाय नहिं कोइ ॥
जो आतम विक्षेप लखु,वहमन करे निरोध।जिस विक्षेप नहिं दीखता,करहे किसकाशोध ॥
जिसके अन्तर गर्वहै,नहिं करता सब कीन। रहित अहंता विज्ञने,कभी किया नहिं चीन ॥

प्रश्न—सांसारिक पदार्थों में राग, द्वेष अवश्य होते हैं उनसे कैसे मुक्त हों वह कहिये।

उत्तर—यावत् विषय हैं उनमें राग, द्वेष आदि बने रहते हैं परन्तु ज्ञानी के निश्चयमेंइन सबका अत्यंताभावहोताहैइसलियेकर्त्ता,भोक्तारूपदृढ़आशक्ति को त्यागकर विद्वान् स्वरूप को सदा निर्विकार जान असंग होता है॥१६॥

विशेष क्या वर्णन करें, समाधि, उत्थान व इष्ट, अनिष्ट सब कल्पनाओं को ज्ञानी तुच्छ (असत्य) जानता है इस निश्चय से सदा जीवन्मुक्त माना जाता है ॥१७॥

जिस पुरुष ने अनेक पदार्थों को संग्रह किया है और बड़े२भोग भीप्राप्त हैं परन्तु उनकी सत्यता का त्याग किये बिना नित्य सुख प्राप्त नहींहोता॥१८

जो स्वात्मा में विक्षेप (चंचलता)जानता है वह सब ओर से वृत्तियों को रोके, पर स्वरूप में विक्षेप आदि को जब कल्पित (झूँठा) जान लिया तो प्रयोजन के अभाव से विद्वान् समाधि में कैसे प्रवृत्त होगा किन्तु ब्रह्मवेत्ता की स्वरूप निश्चयमय सहज समाधि सदा विद्यमान है ॥१९॥

जिसके हृदयमध्य 'मैं' कर्त्ता हूँ यह अहंकर होता हैवह सबको त्याग एकान्त में समाधि लगा बैठे तो भी बन्ध सहित है परन्तु कर्त्तत्व, भोक्तृत्व बुद्धि से रहित हुआ जो पतित प्रवाह चेष्टा करता है वह सदा त्यागी मुक्त स्वरूप है और अज्ञान दशा में जो कुछ भी किया जावेगा वह बन्ध रूप होगा इसलिये केवल अहंकार का त्याग ही मुक्तिप्रद है ॥२०॥

स्वातन्त्र्यात्सुखमाप्नोति स्वातन्त्र्याल्लभते परम्।
स्वातन्त्र्यान्निर्वृतिं गच्छेत्स्वातन्त्र्यात्परमं पदम् ॥२१॥
निवृत्तिरपि मूढस्य प्रवृत्तिरूपजायते। प्रवृत्तिरपि धीरस्य निवृत्तिफलभागिनी ॥२२॥
न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशान्तधीः। यथा यथा यत्र तत्र सम एवावतिष्ठते ॥२३॥
क्व माया क्व च संसारः क्व प्रीतिर्विरतिः क्व वा।
क्व जीवः क्व च तद्ब्रह्म सर्वदा विमलस्य मे ॥२४॥
क्वोपदेशः क्व वा शास्त्रं क्व शिष्यः क्व च वा गुरुः।
क्व चास्ति पुरुषार्थो वा निरुपाधेः शिवस्य मे ॥२५॥

राग द्वेष अज्ञानतज,तभी आनन्द पाय। परमगती सब उन्नती,समीप उसी के आय॥
करे निवृती मूढ़ जो, होवें दुःख महान्। विज्ञ प्रवृती जानिये, सभी सुख की खान॥
धावे नाहीं जननमें, अरु बन की नहिं आश। जहां तहां रह विज्ञवर, समदर्शी सुखराश॥
प्रपंच माया है नहीं, राग विरतभी नाहिं। जीव ब्रह्म भी हैं कहां, शुद्ध तत्त्वके माहिं॥
शास्त्र उपदेश नहीं कुछ,गुरु शिष्य भी तैस। होइ पुरुषार्थ किसलिये,शुद्धरूप शिव ऐस॥

प्रश्न–किस निश्चय कर विद्वान् प्रवृत्ति व राग,द्वेपमेंभीआनन्दपाताहै?

उत्तर–जिसके हृदय से राग, द्वेष आदि संसार शान्त (बाध) हुये हैं, वह सब सुख व नित्य शान्ति तथा कैवल्य पद में विश्राम पाताहै॥२१॥

अज्ञानी जन प्रवृत्ति को त्याग कर भी निष्क्रिय (समाधि) लगा बैठे तो भी दुःखों को कालान्तर में अनुभव करता है और विद्वान् की प्रवृत्ति भी परिणाम में आनन्द को प्राप्त करती है अर्थात् अज्ञानी जो कुछ भी करता है वह बन्धन रूपहैऔर ज्ञानी का व्यवहार सर्वत्र आनन्द का जनक होताहै॥२२॥

विद्वान् विशेष समुदाय में जाने की व निर्जन (वन) की इच्छा नहीं करता किन्तु जैसी दशा स्वभाविक प्राप्त हो उसी में आनन्द को अनुभव करता है ॥२३॥

माया व जगत् तीनों कालों में हुये नहीं, इसलिये राग, वैराग्य दोनों सत्य नहीं और जीव, ब्रह्म शब्द भी उपदेश तलक हैं अर्थात् अवाच्य शिव (तत्त्व) में सर्व शब्दों का अत्यन्ताभाव है ॥२४॥

वेद, शास्त्र व उपदेश और गुरु, शिष्य आदि स्वप्न के समान जागने तक आरोपित (कल्पित) हैं, वास्तविक दृष्टि से अज्ञान, ज्ञान व बन्ध, मोक्ष आदि सब असत्य हैं अर्थात् अज्ञानी के सबोध करने अर्थ सब वेद, शास्त्रों की मर्यादायें सफल हैं पर ब्रह्मज्ञान के होने पर सब भेद का अत्यन्ताभाव है। यह अजात वाद उच्च श्रेणी का सिद्धान्त है ॥२५॥

परम समाहितता सप्तम रत्न (७)

मनोनाश वासना क्षय विभास (३१)

मनोहि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेवचा।अशुद्धं काम संपर्काच्छुद्धं काम विवर्जितम्॥१
अप्यब्धि पानान्महतः सुमेरुन्मूलनादपि। अपि वह्न्यशनात्साधो विषमश्चित्त निग्रहः॥२
अध्यात्मविद्याधिगमः साधु संगम एवच। वासना सं परित्यागः प्राणस्पंद निरोधनं॥३
मनसैव मनश्छित्वा पाशं परम बन्धनम्। भवादुत्तारयात्मानं नासा वन्येनतार्यते॥४

अशुद्ध द्वितीय शुद्ध मन,मलिन वासनाहेतु। शुद्ध काम से रहित लखि,वेग होइ तू चेत॥
समुद्र के भी पान से, मेरु किये निर्मूल। पावक भक्षण से कठिन,निग्रह चित्त अस्थूल॥
ब्रह्म ज्ञान के लाभ युत,सत्संगति हो मीत। तजे वासना प्राण वश,चार युक्ति मन जीत॥
मनन एक जयहोइ मन,बन्धन दृढ़ को खोइ।उधरे आतम इसी विधि, अन्य रीतिनहिं कोइ॥

प्रश्न--तत्व ज्ञान के चिन्तन के साथ२ मुमुक्षुओंको और क्या साधतव्य है।

उत्तर--ब्रह्म बोध के अभ्यास के संग मनोनाश, वासनाक्षय का अभ्यास करने पर शीघ्रतया तत्व ज्ञान की दृढ़ता हो कैवल्य पद की प्राप्ति होती है, वह मन दो प्रकार का होता है, एक शुद्ध, द्वितीय अशुद्ध। इस प्रकार वासना भी दो प्रकार की होती हैं एक ध्येय (विपर्य्य) द्वितिय नेय (देह निर्वाहक) अर्थात् काम, स्वार्थ आदि दुर्वासनाओं से रहित शुद्ध और काम आदि वासनाओं कर सहित अशुद्ध मन होता है॥१।

अहंकार रूप चित्त का निग्रह (रोकना) समुद्र के पान करने से कठिन व सुमेरु पर्वत के उखाड़ने से करड़ा और अग्नि भक्षण करने से भी असाध्य है॥२॥

अध्यात्म विद्या (ब्रह्मज्ञान) को पाना व साधु जनों का संग होना और वासनाओं का रोकना तथा प्राणायाम साधना इन चार उपायों से मन वश होना सम्भव है अर्थात् ब्रह्म ज्ञान कर चित्त सहित सब जगत् का बाध होता है इस के अभाव हुये सत्संग करके धीरे २ ज्ञान प्राप्ति होकर मन का अभाव होता है जो सत्संग भी नहीं कर सके वह वर्णाश्रम, बल, धन, विद्या आदि के गर्व को दूर कर के सत्संग द्वारा अथवा प्राणायाम रूप युक्ति कर निष्काम हुये तत्व ज्ञान की प्राप्ति होकर मन का क्षय होता है अर्थात् ब्रह्म विद्या ही एक साधन है॥३॥

शुद्ध मन करके अशुद्ध मन को निग्रह(बाध)कर अज्ञान रूप फांसी को तोड़ कर संसार समुद्रसे अपना उद्धार करो,सिवाय ज्ञानके दूसरा उपायनहीं॥४।

निःसंकल्पो यथाप्राप्त व्यवहार परोभव । क्षये संकल्प जालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात्॥५
चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्तभावे न कश्चन । अतश्चित्तं समाधे हि प्रत्यग्रूपे परात्मनि॥६
मनो बुद्धिरहंकारश्चित्त कर्माथ कल्पना । संसृतिर्वासनाविद्या प्रयत्नः स्मृति रेवच॥७
इन्द्रियं प्रकृतिर्माया क्रियाचेतीतराअपि । चित्राःशब्दोक्तयो ब्रह्मन्संसार भ्रम हेतवः॥८

यथा प्राप्त व्यवहार कर, ध्येय वासना दूर। बाधमूल संकल्प जब, जीव ब्रह्म भर पूर॥
चित्तअहं सो भेद जग,चित्त अभाव विनाश। चित्त भावना दूर हो,ब्रह्मात्म अविनाश॥
चित्त हंकार बुद्धिमन,कर्म कल्पना भेद। काम अविद्या फुरण भव, ध्येय वासना छेद॥
माय प्रकृती इन्द्रियां, मूल भरम के नाम। सिद्धान्त गति एकता, वास्तव ब्रह्म अनाम॥

प्रश्न–विक्षेप व आवर्ण के निवृत्तिका यथार्थ प्रकार प्रकाशित कीजिये।

उत्तर–संसार का मूल रूप ध्येय वासना के अभाव हुये यथा प्रारब्ध व्यवहारों को करते हुये संकल्प (मूल वासनाओं) के नष्ट होने पर जीव स्वयं ब्रह्म स्वरूप होता है ॥५॥

अहंकार ही सब भेद वासनाओं का कारण है और अहंतारूप चित्त के बाध हुये जीव ब्रह्म स्वरूप होता है अर्थात् अहंता ही जीवत्व है और उस के दूर हुये कैवल्य पद प्राप्त होता है इसी को जीवन्मुक्त व निर्वाण पदवी वर्णन करते हैं ॥६॥

उस अहंकार के अनेक नाम वेदान्त वेत्ताओं ने रक्खे हैं, अहं, चित्त, बुद्धि, मन, भ्रम, वासना, कल्पना, इच्छा, संकल्प, अविद्या, प्रकृति, माया, भ्रान्ति, अज्ञान इत्यादि सब संज्ञा ब्रह्म स्वरूप को भूल कर अनात्मा में सम्बन्ध मानने कर होती है यदि व्यवहार में पहिले कहे सब शब्द (नाम, रूप) भिन्न २ कार्य करते हैं परन्तु मुमुक्षुओं को विचार दशा में यह सब एक अज्ञान के पर्य्याय समझने चाहिये ॥७॥

अर्थात् जब स्वरूप का अज्ञान होता है तब संसार का विस्तार मनोराज्य के समान फैलता जाता है, जब वेदान्त के विचार (अभ्यास) द्वारा यथार्थ ज्ञान होता है यह सब तुच्छ (असत्य) निश्चय होते हैं, ज्ञानी सिद्धान्त की संहिताओं(श्री योगवासिष्ठ,अष्ठावक्र गीता,अवधूत गीता) में दो ही पदार्थ माने हैं, एक दृष्टा द्वितीय दृश्य, इस में दृष्टा स्वयं प्रकाश चैतन्य ब्रह्म है और दृश्य माया आदि सब प्रपंच का विस्तार कल्पित है। इससे स्पष्ट हुआ कि जो संसार के स्वरूप, तब्दीली, संधियों और अभाव को जानता (प्रकाशता) है वह ब्रह्मात्मा अद्वैत है ॥८॥

चित्तं निजमहंकारं विदुश्चित्त विदो जनाः। अंतर्योयमहंभावो जंतोस्तच्चित्तमुच्यते ॥९॥
अपि पुष्पा वदलनादपि लोचन मीलनात्। सुकरोहंकृतेस्त्यागो नक्लेशोत्रमनागपि ॥१०॥
वासना क्षय विज्ञान मनोनाश महामते। समकालं चिराभ्यास्ता भवन्ति फलदायिनाः॥११॥
नास्ति निर्वासनान्मौनात्परं सुख कृदुत्तमम्। विज्ञातात्म स्वरूपस्य स्वानन्द रसपायिनः॥१२॥

अहं चित्तको जानते, जिनें चित्तका ज्ञान। जीव अहंता चित्त लखि, रूपएक यह जान ॥
मर्दन फूलहिं पलकसे, सुगम चित्त यह जीत। जीव ब्रह्म इक ज्ञानसे, रहे कष्ट नहि मीत ॥
क्षीन वासना नष्ट मन, तत्त्व ज्ञान अभ्यास। काल इकत्र सिद्ध कर, होइ ज्ञान फल राश ॥
ध्येय वासना त्यागबिनु,सुख उत्तम नहिं आश। हो ज्ञानी अभ्यासयुत,परमानन्द प्रकाश॥

प्रश्न--योग वाशिष्ठ में चित्त का निग्रह करना लिखा है उसका यथार्थ भाव कहिये।

उत्तर--चित्त के ठीक स्वरूप जानने वाले सर्वज्ञ परिच्छिन्न अहंकार (देहाभिमान) को ही चित्त वर्णन करते हैं इसका वाध करना चित्त का निग्रह करना है ॥९॥

फूलों के मलने में व आखों के मूंदने में कुछ परिश्रम व विलम होता है परन्तु चित्त के वश (वाध) में कुछ परिश्रम व काल की आवश्यकता नहीं। अर्थात् ब्रह्मात्मा के अद्वैत ज्ञान होने पर स्वभाविक चित्त (देहाभिमान) दूर होता है ॥१०॥

जब अहंकार आदि ध्येय वासना दूर होती हैं तब मन आदि स्थित हो नहीं सकते, परन्तु तत्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय का आदर सहित इकट्ठा अभ्यास करने पर मूल सहित जगत का अत्यन्ताभाव होता है ॥११॥

देह आदि में आत्मत्व (अहंकार) १ एक जगत में सत्य बुद्धि २ और आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता जानना यह तीनों विपर्य्य मिलकर ध्येय (मूल) वासना कहाती हैं इन के निवृत्त हुए सब अज्ञान का अभाव होकर जगत् का अत्यन्ताभाव निश्चय होने पर सब बन्धन टूटकर कैवल्य पद (निर्वाण) की प्राप्ति होती है, इस उपाय के बिना कोटि कल्पों तक संसार दुखों का नाश नहीं होता। यह गुप्त सिद्धांत सर्वथा धारणीय है इस में यथार्थ निष्ठा करके शेष कर्त्तव्य कुछ नहीं रहता। पहिले सब कथन का भाव यह है कि और सब प्रयत्नों को त्याग करके विचार (ज्ञान) के द्वारा मुमुक्षुओं को निरन्तर अहंकार आदि का परित्याग करना श्रेयस्कर है ॥१२॥

पुरुषःपरमात्मअहं पुराणःपरमोऽस्म्यहम् । परावरोऽस्म्यहं प्राज्ञःप्रपंचोपशमोऽस्म्यहम्॥१३
प्रज्ञातोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः । एकधा चिन्तमानोऽहं द्वैताद्वैत विलक्षणः॥१४
भोगं कर्म्म समाधिं वा कुरु विज्ञ तथापि ते । चित्तंनिरस्त सर्वाशमत्यर्थं रोचयिष्यति॥१५
व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।तस्यालस धुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित्॥१६

नित्य अनादी पुरुष मैं,माया वर पहिचान। जहां प्रपंच अभाव सब, सो मैं ब्रह्म प्रधान॥
ज्ञाता प्रकाश शान्त वपु, एक रूप पहचान। परे द्वैत अद्वैत लखि, येही सम्यक् ज्ञान॥
भोग विषय सब कर्म कर,चाहि नित्य धर ध्यान।ध्येय वासना बाधके,हो आनन्द महान्॥
क्रिया अल्प सम्बन्ध नहिं,अक्रिय आलस्यधार।रहित दुराग्रह विज्ञको,होवे सुक्खअपार॥

प्रश्न--शुद्ध परमात्मा के यथार्थ ज्ञानकर आनन्द की प्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर-- परमात्मा पुरुष (पूर्ण) नित्य अनादि माया से श्रेष्ठ पुरुष अधिष्ठान है वहाँ प्रपंच व सब दुखों का अत्यंताभाव है ऐसे निश्चय कर सब का स्वामी अद्वैत ब्रह्म रूप आनन्द का समुद्र समझिये ॥१३॥

वह प्रकाश स्वरूप परमात्मा वास्तव से मैं हूँ शान्त स्वरूप सबका प्रकाशक (सिद्ध करता) परमेश्वर है वह अद्वैत रूप से सदा चिंतन करने योग्य है और वास्तव से ब्रह्म एक, दो की कल्पना से रहित केवल निर्वाच्य पद है उसमें वाणी की गम्य नहीं ॥१४॥

ब्रह्म ज्ञान की यथार्थ प्राप्ति के पश्चात् ब्रह्मवेत्ता यथा प्रारब्ध, राज्य में स्थिति हो करके अनेक प्रकार के भोगों को भोगे अथवा निवृत्ति पक्ष में निरन्तर ध्यान (ब्रह्म विचार) करे स्वरूप दृष्टि से दोनों समान हैं अर्थात् अहंकार आदि ध्येय वासनाओं को त्यागकर अद्वैत बोध के होने पर परमानन्द में विश्राम प्राप्त होता है ॥१५॥

जो विद्वान नेत्रों के मूंदने व खोलने रूप व्यवहार में भी आशक्ति (संबन्ध) नहीं मानता अर्थात् यह सब रचना स्वप्न सृष्टि के तुल्य कल्पित है मैं इनसे विलक्षण इन सब दृश्य का साक्षी (सिद्ध करता) मुक्त स्वरूप हूँ ऐसे धृति (निश्चय) युक्त विद्वानों को आत्मानन्द का पूर्ण लाभ होता है और अज्ञानी जीव अन्तर बाह्य वासना करके निरन्तर घिरे हुए इष्ट, अनिष्ट की प्राप्ति द्वारा अनेक प्रकार असह्य २ कष्टों को अनुभव करते हैं और ज्ञानी बाह्यदृष्टि से सब व्यवहारों को करता हुआ निश्चय से नित्य मुक्त (परमानन्द स्वरूप) है ॥१६॥

हेयोपादेयता तावत्संसार विटपांकुरः। स्पृहा जीवतियावद्वै निर्विचार दशास्पदम् ॥१७
हरो यद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजोऽपि वा। तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्व विस्मरणादृते॥१८
शून्या दृष्टिर्वृथा चेष्टाविकलानीन्द्रियाणि च। न स्पृहा न विरक्तिर्वा क्षीणे संसार सागरे॥
सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः। समस्त वासना मुक्तो मुक्तः सर्वत्र राजते॥२०
वासना तानवं राममोक्ष इत्युच्यते बुधैः। पदार्थ वासना दार्ढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते ॥२१

ध्येयवासना जभी लग, तब तक है अज्ञान। ग्राह्य त्याज्य है भाव जब, अंकुर जगत महान॥
हरिहर ब्रह्मा गुरूतव,उपदेशहि बहुभाँति। जगत सभी के बाध बिन,श्रेय सुक्ख नहिं शांति॥
बाध किया संसार जब,शून्यप्रपंच लखाय। क्रिया सभी लखु अर्थ बिन,रागविरागमिटाय॥
मूल वासना दूर तज,है सम्यक् जिस ज्ञान। हो सम दर्शन सब विषे, निष्ठा मुक्ति प्रधान॥
ध्येय वासना क्षीन जब, पंडित कहते मोक्ष। होइ मूल दृढ़ वासना, लखु बन्धन अपरोक्ष॥

प्रश्न—इस विषय में जो और रहस्य है वह भी मेरे कल्याणार्थ कहिये।

उत्तर—कर्त्ता,भोक्ता बुद्धि पूर्वक ग्रहण, त्याग का जो भेद है कि यह वस्तु मेरे ग्रहण व त्याग करने योग्य है यह वासना जब तक हृदय में दृढ़ होती हैं तब तक संसार का बीज (अज्ञान) नष्ट नहीं होता ॥१७॥

यदि हरि, हर आदि भी उपदेशक होवें तब भी जगत् की विस्मृति (अत्यन्ताभाव) किये बिना स्वस्थता (कल्याण) नहीं होता अर्थात् संशय, विपर्य्य होते हुये अज्ञान दूर नहीं होता जैसे गाधी ब्राह्मण को विष्णुदेव ने बारम्बार उपदेश किया तो भी यथार्थ बोध उसको नहीं हुआ ॥१८॥

ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति द्वारा जिसकी भ्रांति नष्ट हुई है अर्थात् जगत् को असत्य जाना है और मन, इन्द्रियों का बाध करके सब व्यवहारों को मिथ्या निश्चय किया है बल्कि राग, वैराग्य का भी अत्यन्ताभाव जानताहै वह सदा मुक्त है ॥१९॥

ऊंच, नीच सब पदार्थों व व्यवहारों में सम दृष्टि होने पर अविद्या रूप मल से रहित हुआ ज्ञानी सब विपर्य्यों को त्याग कर नित्य मुक्त स्वरूप में स्थित होता है उसके लिये विक्षेप व समाधि दोनों समान हैं ॥२०॥

ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर ध्येय(मूल वासनाओं)के नष्ट होने पर विद्वान् जीवन्मुक्त होता है, जिसके अन्तःकरण में जगत की सत्यता है वह समाधि करता भी बन्धन में पड़ा है और ब्रह्मवेत्ता यथा प्रारब्ध राग, द्वेष आदि मन के धर्मों (व्यवहारों) को करता हुआ भी सदैव मुक्त स्वरूप है अर्थात जिसकी अविद्या नष्ट हुई है, व्यवहारिक कर्म उसको स्पर्श नहीं करते ॥२१॥

ईदृशोयं जगद्वृक्षो जायतेऽहंबीजतः। बीजे ज्ञानाग्नि निर्दग्धे नैव किंचन जायते ॥२२
प्रेक्ष्यमाणं च तन्नास्ति किलाहं त्वं कदाचन। एतावदेवज्ञानमनेनैव प्रदह्यते ॥२३
सर्गादावेव सर्गस्य किलास्याभाव योगतः। कुतोहंत्वं कुतस्त्वं त्वंकुतो द्वित्वैक्यविभ्रमः॥
समाकर्ण्य गुरोर्वाक्यं यतंते ये स्वयत्नतः। संकल्प त्याग मामूलं पद प्राप्तौ जयंतिते ॥२५

उदय जगत हंकार से, होइ ज्ञान कर नाश। मूल भूत सब वासना, इन्हें वेग तू नाश ॥
विचार दर्शन तत्त्व यह, होइ अहंता बाध। ये ही उत्तम ज्ञान लखु, पावोगे सुख साध ॥
हुआ नहीं जग काल त्रय, ब्रह्म वास्तवहि एक। नहीं अहं त्वं बने कुछ, किम अद्वैत अनेक ॥
वेद गुरू विश्वास धर, मूल वासना त्याग। ज्ञानातम के लाभ हित, विजय होय वड़ भाग ॥

प्रश्न–इस जगत् का मुख्य कारण कौन है वह स्पष्टता से कहिये।

उत्तर–संसार रूप वृक्ष अहंकार रूप बीज से प्रगट होता है और ब्रह्म ज्ञान रूप प्रज्वलित अग्नि कर दग्ध होने पर उसकी उत्पत्ति नहीं होती॥२२॥

ब्रह्मतत्त्व के यथार्थ निश्चय होने पर विद्वान् को देह, इन्द्रियों व अन्तः करण के धर्मों व गुणों में अभिमान नहीं रहता, अहंकार का नष्ट होना ही मुक्तप्रद है ॥२३॥

वास्तव से जगत् तीनों कालों में उदय नहीं हुआ और न स्थित होता है, उस दशा में अहंता, ममता, इदंता और द्वैत, एकता का अवसर कहां है, किन्तु ज्ञान दशा में सब शब्द, अर्थों का अभाव होता है ॥२४॥

सद्गुरु द्वारा वेदान्त के वाक्यों को श्रवण करते हुये उन में दृढ़ धारणा करके ध्येय वासनाओं की निवृत्ति के लिये और ब्रह्मात्मा के अद्वैत निश्चय करने के अर्थ सद् युक्तियों द्वारा अभ्यास करने पर स्वरूप में निष्ठा होती है। जैसे चक्षु दोष सहित पुरुष को शुद्ध आकाश में मोती माला मिथ्या प्रतिभासित होती है तैसे ही अज्ञान दोष सहित मनुष्यों को राग, द्वेष आदि वासनाओं की प्रबलता से विचित्र रूप संसार आडम्बर बन जाता है।

सब कथन का सार यह है कि श्रवण किये व देखे हुये सब जगत् के पदार्थ वास्तव से केवल अद्वैत चैतन्य हैं जब यह ज्ञान दृढ़ होता है तब परिच्छिन्न अहंकार नष्ट होता है। ऐसी पावन दृष्टि संयुक्त कृतार्थ हुये ज्ञान योगी के लिये किस की उपमा दे सकते हैं इस लिये मुमुक्षुओं को यही उचित है कि सांसारिक सब दुखों की निवृत्ति के लिये ब्रह्मवेत्ता के उपदेश को मनन करते हुये संसार की इष्ट मय वासनाओं को त्याग कर सब बन्धनों से अतीत ब्रह्म तत्त्व में विश्राम (स्थिति) करें ॥२५॥

वाग्मि प्राज्ञ महोद्योगं जनंमूक जडालसम्। करोति तत्त्वबोधोऽयमतस्त्यक्तो बुभुक्षुभिः॥१
नत्वं देहो नतेदेहो भोक्ता कर्त्ता न वाभवान्।चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखंचर ॥२
कर्त्तव्य दुःख मार्त्तण्ड ज्वालादग्धान्तरात्मनः। कुतः प्रशम पीयूष धारा सारमृते सुखम् ॥३
भावोऽयंभावनामात्रोनकिञ्चित्परमार्थतः। नास्त्यभावःस्वभावानांभावाभावविभाविनाम् ॥४

ब्रह्मज्ञान का यही फल,वाचालहि लखु मूक। अक्रिय करता विदुप जड़,भोग बुद्धि देफूंका।
तू शरीर नहि देह तव, कर्त्ता भुक्ता नाहिं। सदैव साक्षी रूप चिद्, ब्रह्म निरच्छिन्नत आहि॥
कर्तव बुद्धी तेज रवि, जरें अज्ञ सब कोइ। ध्येय वासना तजे बिन, सुख कैसे फिर होइ॥
अभाव नाहीं भाव पुनि, वेद वेदान्तहि सार। जगत भावना बाह्य मन, वास्तव नाहीं धार॥

प्रश्न—अनेक मनुष्य विद्वान् को निष्क्रिय और बहुत लोग अभीष्टा-
चरण वाले की निष्कर्त्तव्य बुद्धि मानते हैं इन दोनों पक्षों में क्या ठीक है
अथवा इनसे भिन्न कोई और निर्दोष व्यवस्था हो वह वर्णन करिये।

उत्तर—पहले दोनों पक्ष सदोष और असंभव हैं वह स्पष्ट करते हैं कि
कोई भी देहधारी जाग्रत में सर्वथा निष्क्रिय नहीं हो सकता, द्वितीय पक्ष
अभीष्टाचरण करना लोक व वेदसे विरुद्ध हुआ निन्दित है। अब निष्कर्त्त-
व्यता के यथार्थनिश्चय करनेकेलिये इस अर्थ को आगे स्पष्टतापूर्वकलिखते हैं।

ब्रह्मज्ञान होने पर वाणी में चतुर पुरुष ब्रह्मात्मा को वाणी का अविषय
जानता है इति मूकता १ महान् प्राज्ञ (विद्वान्) बुद्धि आदि को जड़ और स्वा-
त्मा को अलक्ष्य मानता है इति जड़ता २ तथा पौरुषी (उद्यमी)ज्ञानी निजात्मा
को अकर्त्ता जानता है इति आलस्यपन ३ जो स्वात्माको भोक्ता जानते हैं
उन्होंने ब्रह्मज्ञान को दूर से त्याग किया है। अर्थात ब्रह्मात्मा को वाणी
व बुद्धि का अगोचर नित्य अकर्त्ता, अभोक्ता निश्चय करना यथार्थ ज्ञान
कहलाता है ज्ञानी को गूँगा,जड़, आलसी मानना वेद, वेदान्त से विरुद्ध
और अनेक दोषों युक्त होने से त्याज्य है।

हे तात! तू देह नहीं व तेरी देह नहीं न तू कर्त्ता और न भोक्ता है
अतः शुद्ध चैतन्य स्वरूप सब का साक्षी निर्वासनिक हुआ आनन्दी हो ॥२॥

आत्मा में कर्त्तव्यता बुद्धि रूप तप्त सूर्य से तू दग्ध हुआ है इसलिये
मैं कर्त्ता नहीं इस ज्ञानरूप धारा से शीतल हुआ सुखी हो ॥३॥

सब पदार्थ भावना (कल्पना) मात्र हैं वास्तव से किंचित भी सत्य नहीं
किन्तु आत्मा भाव, अभाव दोनों भेदों से मुक्त सर्वत्र व्यापक हैं ॥४॥

न दूरं न च संकोचाल्लब्धमेवात्मनः पदम्। निर्विकल्पं निरायासं निर्विकारं निरंजनम् ॥५
समस्तं कल्पना मात्रमात्मा मुक्तःसनातनः। इति विज्ञाय धीरोहि किमभ्यस्यति बालवत्॥६
नविक्षेपो न चैकाग्र्यं नाति बोधो न मूढ़ता। न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तस्य योगिनः॥७
कृत्यं किमपि नैवास्ति कापि हृदि रञ्जना। यथा जीवनमेवेह जीवन्मुक्तस्य योगिनः॥८
धीरो लोक विपर्यस्तो वर्त्तमानोऽपि लोकवत्। न समाधिं न विक्षेपं लेपं स्वस्य पश्यति॥९

आतमनाहीं दूर ढिग, नित्य प्राप्त पहिचान। भेद क्रिया बिन शुद्धवपु, निर्विकार सो जान॥
प्रपंच मिथ्या कल्पना, ज्ञानी जाने ठीक। ध्याता ध्येयहु भेद युत, चितवै कौन अलीक॥
सब धर्मों से परे वपु,इकाग्र चंचल नाहि। ज्ञान मूढ़ता दुःख सब, विद्वानहि यह काहि॥
कर्तव मनसे दूर तजि,सुक्ख सत्य नहि देख। यथा प्राप्त जो वर्तता,जीवन्मुक्तहि लेख॥
नहीं विज्ञविक्षेपउर, सभी करत व्यवहार। नहि समाधि विक्षेपता, विज्ञ अलिप्तहि सार॥

प्रश्न--ब्रह्मात्मा कहीं दूर स्थित अथवा छिपा (अल्प) है कि उसका दर्शन नहीं होता यह सब अर्थ विस्तार सहित प्रतिपादन कीजिये।

उत्तर--सर्वात्मा होने से ब्रह्म दूर नहीं और व्यापक होने पर संकुचित (अल्प देशी) नहीं किन्तु सब भेदों से रहित नित्य प्राप्त, षट विकारों से अतीत और माया आदि उपाधियों से मुक्त सदा अपरोक्ष है ॥५॥

यह सब प्रपंच कल्पित (मिथ्या) है और सर्वात्मा नित्य अनादि मुक्ति स्वरूप है ऐसा निश्चय करके विद्वान् गम्भीर (अचल बुद्धि) हुआ अज्ञानियों के समान कैसे व किसका अभ्यास करेगा अर्थात् नित्य मुक्त व मन,वाणी का अगोचर ब्रह्म का अभ्यास कैसे किया जावे किन्तु अज्ञान दूर होने तक साधन वर्णन किये जाते हैं जैसे रोगी के लिये औषधियां होती हैं ॥६॥

ब्रह्मरूप विद्वानों में विक्षेप व एकाग्रता दोनों नहीं तैसे अज्ञान व ज्ञान भी कल्पित (आरोप दशा) तक हैं अर्थात् ब्रह्मवेत्ता नित्य निष्क्रिय हैं ॥७॥

पतित प्रवाह यथा प्रारब्ध जैसा व्यवहार ज्ञानी को प्राप्त होता है उसको करता हुआ नित्य अक्रिय है, विद्वान् के स्वरूप में विक्षेप व समाधि आदि व्यवहार स्वप्न सृष्टि के समान कल्पित हैं अतः निष्क्रिय है ॥८॥

विद्वान् देह, इन्द्रियों और अन्तःकरण के धर्मों को प्राकृतिक मानता हुआ अपने को असंग नित्य अकर्त्ता चैतन्य जानता है यही निष्कर्त्तव्यता समीचीन और वेद, वेदान्त के अनुसार (निर्दोष) है ॥९॥

प्रवृत्तौवा निवृत्तौ वा नैव धीरस्तु दुर्ग्रहः। यदा यत्कर्त्तुमायाति तत्कृत्वातिष्ठतःसुखम्॥१०॥
प्रकृत्या शून्य चित्तोयःकुर्वतोऽस्य यदृच्छया॥प्राकृतस्येव धीरस्य न मानो नावमानता॥११॥
अतद्वादीव कुरुते न भवेदपि बालिशः। जीवन्मुक्तःसुखी श्री मान्संसरन्नपि शोभते॥१२॥
एकाग्रता निरोधोवा मूढैरभ्यस्यते भृशम॥धीराःकृत्यं न पश्यन्ति सुप्तवत्स्वपदे स्थिताः॥१३॥
मूढो नाप्नोति तद्ब्रह्म यतो भवितुमिच्छति।अनिच्छन्नपि धीरोहि परब्रह्म स्वरूप भाक्॥१४॥

विज्ञ प्रवृति निवृति किम, ध्येय वासना त्याग। करे यथा प्रारब्ध सब, आनंदी शुभ भाग।
स्वभाव सेती शून्य जग, निज इच्छित व्यवहार। द्वंद मान अपमान तजि, विज्ञ ध्येयसेपार।
सबकुछ करता ध्येयबिन, करीं वासना धूर। जीवन्मुक्ता सुखीनित, अज्ञ भाव से दूर।
शमन निरोधहि मूढ़नर, करे नित्य अभ्यास। विज्ञ कृत्य नहिं देखते, अद्वै पद में बास।
ब्रह्म जानते देह निज, चाहे पद निर्वाण। शुद्ध ब्रह्म हो इच्छ बिन, परम ब्रह्म पहचान।

प्रश्न—ज्ञानी व अज्ञानी के व्यवहारों में विलक्षणता माननी उचित है।

उत्तर--अज्ञानियों और विद्वानों की चेष्टा और तिसके परिणाम में जो भेद है वह स्पष्ट लिखते हैं। अर्थात् ब्रह्मवेत्ता को प्रवृति व निवृति रूप देह, इन्द्रियां व मन आदि के धर्मों में दुराग्रह (अभिमान) नहीं होता किन्तु प्रारब्ध वश जो क्रिया आप्राप्त होती है उसे करता हुआ सुखरूप में स्थित है। वास्तव से जगत् को असत्य जान यथा प्रारब्ध अज्ञानियों के समान वर्तता हुआ विद्वान मान व अभिमान दोनों पक्षों से रहित असंग सदा मुक्त है कर्त्ता, भोक्ता रूप विपर्य्य से रहित विद्वान यथा संस्कार सब व्यवहारों को करता हुआ नित्य कृतार्थ, आनन्द स्वरूप है अर्थात् ब्रह्मवेत्ता देह, इन्द्रियों व अन्तःकरण के धर्म कर्तृत्व, भोक्तत्व सब विपर्य्य वासनाओं से रहित सदा निष्क्रिय (निष्कर्तव्य) रहता है ॥१२॥

अन्तःकरण की एकाग्रता व निरोध करने का अभ्यास अज्ञानी करते हैं विद्वान अपने स्वरूप में किसी क्रिया व विकार को नहीं देखता हुआ सदा अज्ञातमा स्वरूप में स्थित रहता है ॥१३॥

अज्ञानी मनुष्य मुख्य समानाधिकरण (देह आदि के सहित) ब्रह्म होने की इच्छा व प्रयत्न करता है इस अयोग्य उपाय से एकता का ज्ञान नहीं हो सकता है किन्तु देह आदि सब जगत् को बाध कर अद्वैत ब्रह्म को विद्वान् अपना स्वरूप निश्चय करता है इस लिये वह सदा तत्त्व स्वरूप में निष्ठा (स्थिति) है सर्व कथन का भाव यह है कि अज्ञानी विपर्य्य संयुक्त हुआ नहीं करता भी बन्ध है और ज्ञानी करता हुआ भी सदा मुक्त स्वरूप है। दोनों के निश्चय में भेद है ॥१४॥

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्ति कुबुद्धयः। न तु जानन्ति संमोहाद्यावजीवमनिर्वृताः ॥१५॥
विषय द्वीपिनो वीक्ष्य चकिताःशरणार्थिनः।विशन्ति झटिति क्रोडं निरोधैकाग्र सिद्धये१६
अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा।तदाक्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्त वृत्तयः१७
श्रोत्रियं देवतां तीर्थमङ्गनां भूपति प्रियम्। दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य न कापि हृदि वासना॥१८
कर्त्तव्यतैव संसारो न तां पश्यन्ति सूरयः।शून्याकारा निराकारा निर्विकारा निरामयाः॥१९

शुद्ध एकरस आतमा, लखित ध्येय अनजान। सहित मोह नहिंचीनते,जीवतदुःखमहान॥
भोगसिंहको देखकर, अपनी रक्षाकाज। धसते पर्वत गुहामें, ध्यान निरोधहि साज॥
कर्त्ता भुक्ता नहीं निज, ब्रह्मातम दृढ़ज्ञान। ध्येय वासना सभी क्षय, पद मुक्ती पहिचान॥
तीरथ पण्डित देव प्रिय,नारी भूपति लोग।पूज्यदेखसब योग्यविधि, विज्ञध्येयनहिं होग॥
वन्धन दृढ़ कर्त्तव्यता, विद्वानहि सब हान।निर्विकार निज शून्यजग, सुखअव्यक्तमहान॥

प्रश्न–विषयों में वैराग्य व ब्रह्म अभ्यास विद्वानों को करना चाहिये।

उत्तर- माया आदि सब उपाधियों से अतीत, अद्वैत सर्वात्मा का चिन्तन अल्प बुद्धि (अर्द्ध प्रबुद्ध) करते हैं, कारण यह है कि जब तक अद्वैत, शुद्ध ब्रह्मात्मा का निश्चय नहीं किया तभी तक ब्रह्म चिंतन किया जाता है अर्थात शुद्ध नित्य, मुक्त स्वरूप को यथार्थ नहीं समझ कर बुद्धि आदि का विषय ब्रह्म को दुर्बुद्धि मानते हुये जीवन पर्य्यंत दुःखों को भोगते हैं ॥१५॥

विषय रूप सिंह को देख भयभीत हुये अज्ञ मनुष्य अपनी रक्षा करने के लिये पर्वतों की गुफाओं में प्रवेश करते हैं और ज्ञानी सब प्रवृत्ति को स्वप्न सदृश मिथ्या जानकर स्वरूप में मग्न होता है ॥१६॥

स्वात्मा को नित्य अकर्त्ता, अभोक्ता निश्चय करके सब वृत्तियों का अत्यन्ताभाव जानकर विद्वान व्यवहार करता हुआ भी सदा अकर्त्ता निर्विकार असंग रहता है और मन आदि के धर्मों (व्यवहारों) में तादात्म्य (सम्बन्ध) मानना अज्ञानता है ॥१७॥

पूज्यों (विद्वानों) व विष्णु आदि देवताओं और गंगा आदि तीर्थों को पूजता हुआ तथा राजा व प्रिय बान्धवों को सुख का साधन और ब्रह्मात्मा को इन सब से अतीत सदा मुक्त रूप जानता हुआ तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि दुर्वासनाओं से अतीत विद्वान् सदा निर्लेप रहता है ॥१८॥

शुद्ध आत्मा में कर्त्तव्यता मानना ही संसार रूप बन्ध है ज्ञानी कर्तव्य बुद्धि से रहित हुआ अद्वैत, निराकार, निर्विकार स्वरूप में सदा स्थित होता है इसलिये ब्रह्मवेत्ता में कर्त्तव्यता नहीं रहती किन्तु ब्रह्मात्मा को नित्य अकर्त्ता, अभोक्ता जानकर के सब प्राकृति व्यवहारों को करता है ॥१९॥

स्फुरतोऽनन्त रूपेण प्रकृतिं च न पश्यतः।क बन्धःकच वा मोक्षःक हर्षःक विषादिता॥२०॥
ज्ञानाद्गलित कर्म्मायो लोक दृष्ट्यापि कर्मकृत्। नाप्नोत्यवसरं कर्त्तुं वक्तुमेव न किञ्चन२१
नैव प्रार्थयते लाभं न लाभे नानुशोचति। धीरस्य शीतलं चित्तममृतेनेव पूरितम् ॥२२॥
जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति। ब्रुवन्नपिनच ब्रूतेकोऽन्यो निर्वासनादृते ॥२३॥
मुक्तो यथा स्थिति स्वस्थ कृत कर्त्तव्य निर्वृ तिः। समःसर्वत्र वैतृष्ण्यान्नस्मरत्यकृतं कृतम्२४

अनंत चैतन दृष्टि वपु,जगत सत्यता नाहिं।बन्धमोक्ष पुनि हर्ष दुख,है स्वरूप में काहि ॥
बाध कर्म सब ज्ञानसे, करता कर्म अनेक। करनी कथनी सभी का, नाहीं अवसर एक ॥
ज्ञानी इच्छा रहित पुनि,लाभ हानि तिस नाश।बोध सुधाकर तृप्तवह,सर्व सुक्खकी राश ॥
जाने सब कुछनहीं निज,कथन करे नहिं सोइ।सब धर्मों से परे वपु, ध्येय वासना खोइ ॥
कर्म कृत्यसे रहित लखु,यथा लाभ वर्तन्त।ध्येय त्याग सब धर्ममन, अक्रियजानसिधंत ॥

प्रश्न–जीवन्मुक्त विद्वान् की अन्तर दशा को स्पष्टता से वर्णन करिये।

उत्तर–उत्पत्ति आदिषट विकारों से अतीत,अनादि,अनन्त,अद्वैत चैतन्य स्वरूप को निश्चय करके विद्वान् सम्पूर्ण जगत् को असत्य जानता है ऐसे मुक्त पुरुषों में संसार रूप बंध और मुक्त होने की संभावना कैसे की जावे इसलिये विद्वान् मनके धर्मोंका और कारण,कार्य जगत्का अत्यन्ताभाव जानताहै॥२०॥

ब्रह्मज्ञान करके मिथ्या हुये हैं कर्म जिसके ऐसा ज्ञानी प्राकृत (व्यवहार दशा)में क्रियाओं को करता हुआ सदा असंग रहता है अर्थात् उसके निश्चय में कर्मों का सद्भाव नहीं बल्कि उपदेश आदि व्यवहार को भी स्वरूप में सत्य नहीं जानता है ॥२१॥

ब्रह्मवेत्ता को प्रिय पदार्थों की वासना और अप्रिय पदार्थों के वियोग से हर्ष विशाद नहीं होते,हेतु यह है कि जगत् के सब पदार्थों से अतीत और माया के गुणों से परे अद्वैत बोध स्वरूप नित्य अकर्त्ता,असंग रूप है॥२२॥

शान्ति हृदय(आत्म ज्ञानी)सदा स्वरूप में संतुष्ट है और बाह्य दृष्टि से यथा प्रारब्ध सब व्यवहारों को करता भी वास्तव से निन्दा, स्तुति आदि विकारों से मुक्त सदा अकर्त्ता है ॥२३॥

पतित प्रवाह(यथा प्रारब्ध) विद्वान् राज्य पालन आदि व्यवहारों को करता हुआ भी हृदय से विपर्य्यको त्याग कर मंने यह क्रिया है और यह नहीं किया इत्यादि वासनाओं से मुक्त सदाअकर्त्ता,अभोक्ता इस निश्चय युक्त है यह निष्कर्त्तव्यता परमानंद दायनी है और देह आदि कर क्रिया का त्यागकरना और जगत् की सत्यता व स्वात्मा को,कर्त्ता,भोक्ता जानना यह विपर्य्य अनेक कल्पों तकसंसार दुःखों से पीड़ित करतेहैं। ज्ञानी व अज्ञानी का यह भेदहै॥२४॥

एकस्यानेक संख्यस्य कस्याणोरबुधेरिव । अन्तर्ब्रह्माण्ड लक्षाणि लीयंते बुद्बुदाइव ॥१॥
अचंद्रार्काग्नितारोपिकोऽविनाशःप्रकाशकः।अनेत्र लभ्यात्कस्माच्च प्रकाश सं प्रवर्त्तते ॥२॥
निमेष एवकः कल्प कः कल्पोपि निमेषकः । कि प्रत्यक्षमसद्रूपं कि चेतनमचेतनम् ॥३॥
कश्च वायुरवायुश्चकःशब्दोऽशब्द एवकः।कःसर्वं न च किंचिच्च कोहं नाहं च किं भवेत्॥४
अणुत्वमजहत्कोणुर्मेरोःस्थूलतरा कृतिः।वालाग्र शत भागात्मा कोणु रुच्चैः शिलोच्चयः॥५

वास्तव एक अनेक जग,किस अणु गत विस्तार।समुद्रसे ज्यों बुदबुदे,ब्रह्मण्ड लाखोंधार॥
सर्व प्रकाशक नित्य को,सूरचन्द्रसे भिन्न।विषय नेत्र का जो नहीं,होप्रकाश मति खिन्न॥
जिसहिनिमेष सम कल्प बहु,अपरोक्षहि नहिंजान। स्वरूप चेतन दृष्टिजड़,मूढनहैं अज्ञान॥
पवन कौन जो वायु बिन,अशब्द पद धुन सोइ।होवे सबहीं अकिंचित, अहं अनाहमकोइ॥
तेज अणू पन नहींका, अधिक मेरु फैलाव। बाल अग्रसम हुआको, पर्वत तुल्य उचाव॥

प्रश्न—कर्कटी देवी के परमार्थ विषयक सब प्रश्न और मन्त्री व राजा के सदुत्तरों को श्रवण किया चाहता हूँ अनुग्रह पूर्वक संक्षेप से वर्णन कीजिये ।

उत्तर—(१) वह एक अणु कौन है ? जो उपाधि से रहित हुआ भी अनेकता को प्राप्त होता है (२) ऐसा समुद्र कौन है? जिसमें बुद्बुदों के तुल्य लाखों ब्रह्मांड उत्पन्न होते हैं (३) वह आकाश कौन है ! जो शून्य भी नहीं उसमें अहंत्वं आदि अनेक रचना होती भासती हैं(४)॥१॥वह अविनाशी रूप प्रकाश कौन है ? जो सूर्य, चन्द्रमा,नक्षत्र, आदि से विलक्षण स्वयं प्रकाश है और इन्द्रिय व बुद्धि का अगोचर है (५) दुर्लक्ष्य रूप अणु कौन है, जो भाव, अभाव से अतीत व दूर व समीपता से रहित सदा अचल है ॥२॥

(६) वह अणु कौन है ? जिसमें कल्प भी निमेष समान है और जिसका निमेष रूप फुरणा महान् कल्प के तुल्य है (७) नित्य अपरोक्ष रूप कौन है? जो अज्ञानियों को असत्य के सदृश भासता है (८) वह चिदणु कौन है? जिसको मूर्ख शून्य रूप मानते हैं ॥३॥

(९)वह वायु कौन है ? जो चलने से रहित हुआ सब में व्यापक प्रकाशमय है।(१०)वह शब्द कौन है ? जिसमें किसी शब्द की प्रवृति नहीं और नित्य अद्वैत, व्यापक रूप हुआ अहं व नाहं सब वृत्तियों में साक्षी रूप से भासता है(११)वह अणु कौन है ? जो सर्वात्मा हुआ भी फिर यत्नों (साधनों) करके प्राप्त होता है, जिसको पाकर शेष पाने योग्य कुछ नहीं रहता ॥४॥

(१२) वह अणु कौन है ? जो अपनी सूक्ष्मता को नहीं त्यागता हुआ सुमेरु से भी स्थूल (दृढ़) है [१३]वह अणु कौन है जो लघु हुआ भी पर्वतों से ऊंचा है। [१४] वह अणु कौन है ? जो अपने छिपाने में असमर्थ्य है॥५॥

अणौ जगंति तिष्ठन्ति कस्मिन्वीज इवद्रुमः। वीजानि निष्कलान्तानि स्फुटान्यनुदितान्यपि॥
केनेदमाततमनेक चिदेव विश्वं किं सार एव मति वलासिहंसिपासि।
किं दर्शनेन न भवस्यथवा सदैव नूनं भवस्य मल दृग्वदनः स्वशांत्यै॥८
चिदणोः परमस्यांत्तः सदिवासदिवापि वा। वीजेंतद्रुमसत्तेवस्फुरतीदं जगत् स्थितम्॥९
एषोणुःपरमाकाशः सूक्ष्म त्वादप्प लक्षितः। मनः षष्ठेन्द्रियातीतस्थितःसर्वात्म कोपि सन्

उत्पतिअणुलय होइ जग, कौन प्रलयवत वीज। प्रागभावसयसृष्टिका,रहिअव्यक्त अवीज॥
चिदहिउपाधिक भेदवहु,कौनविश्व विस्तार। अमलदृष्टिहो शांतसम,कथो अपनछुटकार॥
चिदणु परम के मध्य जग,सत्य असत्य स्वरूप। वृक्ष वीज सम वारि निधि, प्रश्न एक चिद्रूप॥
सर्वप्रकाशक अणूचिद, अभिप्राय सब एक। अति सूक्ष्म अज्ञात अणु, व्यापक रूप अनेक॥

प्रश्न—और प्रश्न व मन्त्री के उत्तरों को कृपा करके वर्णन कीजिये।

उत्तर—(१५) वह अणु कौन है? जो सदा निर्व्यव हुआ भी सब ओर से चक्षु, मुख, हाथ, पाव इत्यादि अंगों सहित भासता है और जिसके अल्प भूलने से सहस्रों कल्पों की रचना हो भासती है (१६) वह अणु कौन है? जो अति सूक्ष्म व अद्वैत रूप हुआ भी निमेष काल व कल्प इत्यादि शब्दों सहित भासता है और वास्तव से सब शब्दों से परे है॥६॥

(१७) प्रलयकाल में कौन शेष रहता है जिसमें सूक्ष्म रूप से सब जगत स्थित है और जिसमें वास्तव से सृष्टि असत्य है और व्यवहारिक अनेक रूपों को धारण करता है। (१८) ऐसा चिदणु कौन है? जो बीजांकुर अर्थात् कारण, कार्य से रहित है और अपनी सिद्ध के लिये प्रपंचरूप होता है(१९) वह चिदणु कौन है? जो चक्षु आदि के विना हुआ भी सबका प्रकाशक है॥७॥

(२०) वह अणु कौन है? जिसमें अविद्या आदि उपाधियों द्वारा अनेक रचना भासतो है और जिसकी सत्ता, चैतन्यता को पाकर सब व्यवहार होते हैं (२१) वह कौन है? जो असुरों के नष्ट करने व साधवों की रक्षार्थ शरीर को धारता हुआ भी सदा निर्व्यव और असंग रहता है और जिसके ज्ञान होने पर सब भ्रान्ति नाश होकर शान्ति प्राप्त होती है॥८॥

जिस२युक्ति व क्रम से प्रश्नों के उत्तरों को मन्त्री वर्णन करता है वह यह हैं,कि अति सूक्ष्म वस्तु को अणु कहते हैं अर्थात् चैतन्यात्मा ही अति सूक्ष्म हुआ समुद्र के समान विस्तृत और आकाश से भी अधिक व्यापक है॥९॥ वह चिदणु स्वयंप्रकाश हुआ सबका प्रकाशक और सूक्ष्मतासे दुर्लक्ष्य है।

चिन्मात्राणुः सएवेहसर्वंकिंचिन्मनः स्थितम्। न किंचिदिंद्रियातीत रूपत्वादमलः स्थितः॥
सोहं भवानेव भवान् संपन्नोऽद्वैत वेदनात्। सभवान्नभवेन्नाहं जातो बोधवृहद्वपुः ॥१२
तत्संवित्त्या वह्नि सत्तातेनात्यक्ता नलाकृतिः। सर्वं गोष्पदहत्येव सजगद्द्रव्य पात्रकः॥१३
अनेत्र लभ्योनुभव रूपो हृद् गृह दीपकः। सर्वं सत्ता प्रदोनंतः प्रकाशः परमः स्मृतः॥१४
दूरे सोऽपिअलक्ष्यत्वच्चिद्रूपत्वान्न दूरग। सर्वं संवेदनाच्छैलोल्लसावे वाणु रेवसन्।१५

सवविध है पर नहीं कुछ, बहुधा अणू अतीत। पूर्ण इन्द्रियों से परे, चेतन सर्व प्रतीति॥
चिदणु सत्यसे प्रगट हम, अद्वै आतन सार। वाह्य दृष्टिसे हमी तुम,वास्तव बोध अपार॥
सर्वांतम है अग्नि सम, स्वरूप त्यागे नाहि। प्रकाश शीतल पूर सब, जराय चेतन काहि॥
चक्षु आदिका नहिं विषय,चिद्दीपक उरधारा।स्वयं अनंत प्रकाश लखि,जग सत्ता आधार॥
सूक्ष्म हुआ सो दूर चिद्, सर्वातम ढिगज्ञान। गोनहि गोचर अहंका, पर्वत सेति महान्॥

प्रश्न- और जिस२ प्रकार से मन्त्री उत्तर देता है वह भी वर्णन कीजिये।

उत्तर-सूक्ष्म चैतन्य ही मन, इन्द्रियों की वाह्य प्रवृत्ति द्वारा अनेक रूप हो भासता है, यदि ज्ञान दृष्टि से देखा जाय तो मन आदि परिच्छन्न पदार्थों से परे शुद्ध ब्रह्म ही निराकार हुआ अणु संज्ञा को पाता है ॥११॥

अद्वैत निश्चय होने पर चिदणु तुम्हारा असली स्वरूप है। ब्रह्म मैं हूँ, यह शब्द भी उपदेश तक हैं, परमार्थ से ब्रह्मात्मा में तुम्हारा, हमारा कोई भी शब्द नहीं किन्तु बोध स्वरूप अवाच्य पद है ॥१२॥

चिदणु अपने स्वरूप से अन्यथा कभी नहीं होता, वह ज्योति तेज (जलाने) से रहित परम शीतल है और अग्नि आदि सब ज्योति उसी चिदणु के आश्रित प्रकाश करते हैं। अर्थात् सब जगत् का जीवन रूप हुआ परम प्रिय है ॥१३॥

चिदणु अपने सूक्ष्म रूप को नहीं त्यागता तो भी अज्ञानी मनुष्यों को अति दूर (जानना अति कठिन) है और विचार शील विद्वानों को अपना स्वरूप हुआ बहुत समीप अर्थात् नित्य अपरोक्ष है ॥१४॥

उस चिदणु के निमेष फुरणे से अनेक कल्पों सहित असंख्य जगत बन जाते हैं वास्तव दृष्टि से ब्रह्मात्मा में एक, दो शब्दों का अभाव है वह सर्वात्म विस्तृत (व्यापक) हुआ भी महान् सूक्ष्म है यानी आरोप व भ्रांति दशा में स्थूल, सूक्ष्म व जड़, चैतन्य सभी आकार उसी चिदणु में कल्पित होते हैं, परमार्थ दृष्टि से वह चैतन्य अद्वैत, अच्युत, अशब्द पद है ॥१५॥

निमेष कल्प शैलादि पूर योजन कोटियः। यत्राणावेव विद्यते तत्रद्वैतैक्यते कुतः ॥१६
सर्वत्वादेव सद्रूपो दुर्लक्ष्यत्वादसद्वपुः। चेतनश्चेत्नात्म त्वाच्चेत्या संभवतस्त्वचित् ॥१७
तथाचैवं विध न्याय भावनाभ्यासनिर्मलात्। चिदाकाशेन नियांति यथा भूतार्थ दर्शनः॥१८
प्रत्यक्षमक्ष सारत्वादप्रत्यक्षं ततोतिगम्। दृश्यत्वेनैप वोदेति चेताद्रष्टैव सद्वपुः ॥१९
शांतं समस्तमजमेकमनादि मध्यं नेहास्तिकाचन कला कलना कथंचित्।
निर्द्वंद्व शांतमतिरेकमनेकमच्छमाभास रूपमजमेक विकासमास्ते ॥२०

निमिप फुरणसे कल्प गिर, मिथ्या हों प्रतिभास। द्वैत एकता मध्य अणु, अद्वै चैतन भास॥
सत्यरूप प्रत्यक्ष चिद, अलक्षता सेदूर। सबमें चेतन रूप निज, अलभ्य जड़ कहि धूर॥
जग मिथ्यालखि युक्तिवर,तीव्र करे अभ्यास। ज्ञानी हते समूल जग,नहिं संसारहिं भास॥
जगसत्ता प्रत्यक्ष वपु, सूक्ष्म हुआ परोक्ष। सत्यरूप हो दृश्य सब, विज्ञ पुरुप अपरोक्ष॥
शांतहृदय त्रयकाल विन, निर्मल शोधन योग। अद्वै सर्व प्रकाश वपु,कलना भेद अयोग॥

प्रश्न—मन्त्री के सिद्धान्त सुनते २ मैं तृप्त नहीं होता अतः और कहिये।

उत्तर—उस सूक्ष्म चिदणु में एक निमेष के फुरणे कर अनन्त सृष्टियाँ प्रतीत होती हैं, वास्तव से अति सूक्ष्म चैतन्य एक, दो आदि शब्दों से अतीत है ॥१६॥

चिदणु सत्य, असत्य कैसे है, इसका उत्तर यह है कि सर्वात्मा रूप होने से सत्य है और दुर्लक्ष्य होने पर अज्ञानियों को असत्य के समान भासता है तथा चैतन्य, अचैतन्य का जो प्रश्न था उसका भाव यह है कि चिदणु सब ब्रह्माण्डों का प्रकाशिक हुआ केवल चैतन्यमात्र है और मन, वाणी का अविपय होने से संसारी मनुष्यों को शून्य (असत्य) के समान भासता है ॥१७॥

जगत् को असत्य जनानेवाली युक्तियों के अभ्यास करने पर परमार्थ का अनुभव करके अविद्या के निवृत्त हुये परमात्मा में पुनः संसार (बन्ध) होने की शंका नहीं रहती ॥१८॥

प्रत्यक्ष हुआ भी कौन असत्य की नाईं भासता है उसका उत्तर यह है कि अज्ञात्मा मन, इन्द्रिय आदि अनात्म समाज को सत्ता देनेवाला और चैतन्य करता है इसलिये नित्य अपरोक्ष है और बुद्धि आदि का अविपय हुआ परोक्ष है वह चैतन्यात्मा भ्रान्ति काल में दृश्य रूप हो भासता है ॥१९॥

सब ओर से शान्त स्वरूप व उत्पत्ति आदि षट विकारों से रहित और कारण, कार्य से अतीत तथा सब कालों में विद्यमान शुद्ध बोध स्वरूप सर्वत्र व्यापक है तथा यह जगत् रचना मिथ्या (कल्पना मात्र) है ॥२०॥

जाग्रत प्रत्ययाभावो यस्याहुः प्रत्ययंपरम्। सर्वसंकल्प सन्यासश्चेतसा यत्परिग्रहः ॥२१
एषोणुर्वेदनाद्वायुः स्व भ्रान्तिर्द ग दृश्यत। अतो न किंचिद्वाव्यादि केवलं शुद्ध चेतनम् ॥२२
सोणुः सर्वन किंचिच्च सोहं नाहं स एव च। सर्वं शक्त्यात्मनास्यैव प्रतिभैकात्र कारणम् ॥२३
आत्मा यत्नशतप्राप्यो लब्धेस्मिन्न च किंचन। लब्धं भवति तच्चैतत्परमं वा न किंचन ॥२४
परमाणु तयैवापि चिन्मात्रेणाणु नामुना। परि सूक्ष्म तमेनैव विष्वग्विश्वं प्रपूरितम् ॥२५

बाधे तीनों दशा जग, होता तुर्य प्रकाश। सब कर्मों का होइ लय, निश्चा इक सुख राश ॥
फुरण वायु सो पवन सम, भ्रान्ती कर हो भान। यथार्थ चैतन रूप घन, शुद्ध एक तू मान॥
चिदणू माया द्वार सब, होय अहं त्वं रूप। भेद बुद्धिकर अहंसो, अहं नहीं चिद्रूप ॥
दुर्लभ पाये ज्ञानसे, निज आतम किम पान। इससे उत्तम यत्न नहिं, ब्रह्म रूप पहिचान ॥
किस अणु योजन व्याप्य बहु, लखि यह प्रश्न अपेल। देशकालसबवस्तु गत, सीमा चेतनमेल॥

प्रश्न—चिदणु में भासित हुआ जगत कुछ हानि करता है अथवा नहीं?

उत्तर—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप संसार रचना का जब यथार्थ ज्ञान द्वारा बाध होता है तब मिथ्या भासित हुये जगत से चैतन्य स्वरूप की किंचित भी हानि नहीं होती, अज्ञान काल में जगत का अस्तित्त्व है अखण्ड रूप ब्रह्मात्मा के निश्चय होने पर प्रपंच का अभाव होता है अर्थात् शुद्ध, निर्विकार, परमानन्द स्वरूप का साक्षात्कार होने पर हानि, लाभ की शंका नहीं होती २१ विक्षेप शक्ति द्वारा चिदणु फुरण की नाईं हो भासता है वास्तव से निर्मलरूप चैतन्य घन सदा(अपरोक्ष अपना स्वरूप) है, संसारदशा में चिदणु शब्द वृति से आकाश रूप होकर भासने लगता है परमार्थ से नाम, रूप से अतीत चैतन्यात्मा नित्य मुक्त है ॥२२॥

चिदणु में अहं, त्वं, द्वन्द रूप जगत मिथ्या भासता है अर्थात वास्तव दृष्टि से चिदात्मा अद्वैत, निर्वाच्य है उसमें तू, मैं इत्यादि भेद कल्पना का अभाव है ॥२३॥

वह चिदणु अनेक साधनों कर पाया जाता है और प्राप्त हुये पश्चात कुछ पाया नहीं ऐसा प्रतीति होता है अर्थात अपना असली स्वरूप भूला हुआ था उसको सद्गुरु की कृपा और अपने प्रयत्न से स्मरण किया है ॥२४॥

चिदणु व्यापक हुआ सहस्रों योजनों को पूर्ण करता है अर्थात चिदसत्ता देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित सर्वत्र अनुस्यूत और सूर्य आदि सब भौतिक ज्योतियों का प्रकाशक है ॥२५॥

प्रकटोनेन दीपेन प्रकाशोनुभवात्मना। स्वसत्ता नाश पूर्वांहि विनानेनभवेत्ततः ॥२६॥
यदि सूर्यादिकं सर्वं जगदेकं जडं भवेत्। ततःकिमात्कं रूपं प्रकाशःस्यात्क्वाथकिम्॥२७॥
तेजांस्यर्कंदु वह्नीनां नभिन्नानि तमोघनात्।एतावानेवभेदोस्ति यद्वर्णं शौक्लपक्ष्ण्णात॥२८
अर्कःकुर्वन्नहोरात्रे दर्शयत्या क्षतिं यथा। चितिःसदसती कृत्वा दर्शयत्या क्षतितथा॥२६॥
अशक्तया स्वात्म गुप्तौ सर्वमाच्छादितं जगत।चिताणुतामेव परांसंप्रसार्य वितानवत्॥३०

बोध प्रकाशक तेज सम,अनुभव दीपक सोइ।साक्षी चेतनके बिना,दृश्य सिद्ध नहि होइ।
भौतिक ज्योती भानुजड़,कोइ प्रकाशक और।चेतन अनुभव होइनहिं,रविसत्ता किसठौर।
अग्निचक्षुद्युति सोमरवि,जड़भोतिक निर्जोति।श्वेत वर्णसबकृष्णनिशि,साघन चेतनज्योति
रविकर जैसे रात दिन,भासित दोनों रूप। असत सत्य लेय सर्वजग,करेसिद्ध चिद्रूप।
व्यापक चेतन शक्तिवहि,अपने ढकने काज। पूर्ण ज्ञानमय शुद्धवपु,सब ब्रह्मांड विराज।

प्रश्न—महान् तत्त्ववेत्ता महाराजा के सदोत्तरों को प्रगट कीजिये।

उत्तर—चिदात्मा तम व प्रकाश दोनों का साक्षी (स्वतः प्रकाश मय) सब को सत्ता, स्फूर्ति (चैतन्यता) देने वाला है अर्थात् एक चिदणु ही सब ज्योतियों का ज्योति है और सूर्य आदि भौतिक होने से प्रकाश रूप नहीं, किन्तु जड़ ज्योति हैं ॥२६॥

यदि सूर्य, चन्द्र आदि में स्वरूप से प्रकाशता होती तब इनको प्रकाश एक रस रहना चाहिये था, यानी सूर्य आदि ज्योति संसार दशा में अपने२ काल में पदार्थों को प्रकाश करता भासते हैं परन्तु यह सब भौतिक ज्योति कल्पित हैं इन को एकरस सिद्ध करने वाला ब्रह्मचैतन्य ही मुख्य ज्योति है ॥२७॥

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, अग्नि, बुद्धि वृत्ति इत्यादि सम्पूर्ण भौतिक ज्योतियों की ज्ञान दृष्टि से जड़ता है इन अनात्म पदार्थों में यह भेद है किसूर्यादि सत्व प्रधान होने से शुक्ल वर्ण (रंग) के हैं और तमो प्रधान भीत व रात्रि आदि पदार्थ श्याम वर्ण हैं इसलिये इनको सूर्य आदि प्रकाशित करते हैं॥२८॥

व्यवहार दशा में जैसे सूर्य और सब पदार्थों को प्रकाशता है तैसे ही चतन्यात्मा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और सूर्य आदि को तीनों कालों सहित प्रकाश करता परमानन्द स्वरूप चैतन्य मात्र है ॥२६॥

चिदणु का ऐसा प्रकट प्रकाश है कि उस का ढकना (छिपना) असंभव है किन्तु स्वयं प्रकाश होने से सब पदार्थों के बाहर, अन्तर एक समान सत्ता, स्फूर्ति देने वाला सर्वत्र व्यापक है ॥३०॥

ततःसोपि निमेषोणु कल्पकोटि शतान्यलम् । सर्वं सत्ता विलासेन प्रतिभैका विजृम्भते।३१
दृश्ये सत्यस्तित्वेद्रष्टा दृश्यं द्रष्टरिभासते । द्वयेन च विनानेकं नैकमप्यस्ति चानयोः ।३२।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नः परमात्मास्ति केवलः । सर्वात्मत्वात्स सर्वानुभवतः स्वतः ।३३।
एवं स्थितेतु यस्तिष्ठंस्तत्तादृक्त दिवास्ति हि।तस्मान्न व्यतिरिक्तं तद्रूपं द्रव इवांभसः ।३४।
न जगन्नाजगच्चास्ति विद्यते चित्पराशुभा। सर्वात्मिका यदा यत्र सा थेदिति तत्तथा ।३५।

निमेष आतम फुरणसे,कोटि कल्प हों भान। चेतन सत्ता देय सब,होइ त्रिलोक महान् ॥
द्रष्टा चेतन दृश्य लखि,तब स्वरूप अज्ञान । जाने दृष्टा रूप निज,होय दृश्य मति भान ।
देशकाल परिच्छेदबिन,सबआतम पहिचान । स्वयंप्रकाश स्वरूपइक,जड़ प्रपंच महान् ।
सोने भूषण बनेजिम, तैसे ब्रह्म से द्वैत । माया जानों द्वैत जग, लखैं विज्ञ अद्वैत ।
जग असत्य अरु सत्यनहिं,चिद् कल्याण स्वरूप।कर्मवासना उदयजस,भासितसोईरूप

प्रश्न—सब दृश्य को एक रस सिद्ध करने वाला कौन है वह कहिये ।

उत्तर--व्यवहार दशा में चैतन्य सत्ता के एक निमेष फुरणों से स्वप्न सृष्टि के समान अनेक कल्पों संयुक्त ब्रह्माण्ड हो भासता है वही चैतन्य सत्ता समूह ब्रह्माण्डों को संभूषित करती है अर्थात् चैतन्य सर्वात्मा होने से सर्वत्र व्यापक सच्चिदानन्द नित्य अद्वैत है॥३१॥

दृष्टा की अपेक्षा से दृश्य और दृश्य के उद्देश से द्रष्टा का भान होता है, जब तक जगत् (दृश्य) में सत्ता भासती है तब तलक चैतन्य आत्मा का ज्ञान नहीं होता किन्तु दृश्य के मिथ्या भासने पर अद्वैत चैतन्य तत्व का यथार्थ बोध होता है जैसे दीपक आदि और पदार्थों को प्रकाश करते हैं।तैसे स्वयं ज्योति चैतन्य त्रिपुटियों सहित सब प्रपंच को सिद्ध करता है ॥३२॥

परमात्मा सब भेदों से रहित जगत् का आधार और सब शब्द अर्थों से अतीत निर्वाच्य रूप हैऔर द्वैत,अद्वैत आदि शब्द उपदेश के लियेहैं॥३३॥

जैसे स्वर्ण की सत्ता से कुंडल, कंकन आदि अनेक आभूषण बनते हैं और समुद्र आदि का जल द्रव्यता शक्ति से तरंग, बुद्बुदे, चक्राकार हो भासता है तथापि स्वर्ण और जल में कुछ द्वैत नहीं होता है ॥३४॥

चिदणु जगत् रूप नहीं होता किन्तु चिदानन्द सब में अनुस्यूत हुआ विक्षेप शक्ति द्वारा जीवों के पूर्वले संस्कारों से अनेक रूप होकर भासता है वास्तव में सब शब्द,अर्थों से अतीत ब्रह्मात्मा चैतन्य नित्य अप्रमेय है॥३५॥

समता समाधि विभास (३४)।

समता सर्व भावेषु यासौ सत्य परास्थितिः। परमामृत नाम्नी सा समतैवावशिष्यते ॥१
कालत्रयमपेक्षत्वा हीनायाश्चैत्य बन्धनैः। चित्तश्चैत्यमुपेक्षत्व्याःसमतैवावशिष्यते ॥२
केषुचिन्न निबन्धनाति सौगंध्य रतिमेक धीःसमबुद्धि रविस्रोभो मद्यामोदेष्विवद्विजः॥३

समता सभी पदार्थमें,ब्रह्म सत्य निःशेष। परम सुधा इक दृष्टिसम,समता यही विशेष॥
जगत काल त्रयबाधके, दृश्य बन्धसे रहित। चित्तचैत्य यह भावतज,समता सोई लहित॥
इष्ट अनिष्टहि बुद्धि सम,एक ब्रह्मका ज्ञान। भेददृष्ट जग इव तजे,मदिरा विप्र गिलान॥

प्रश्न–सम दृष्टि का यथार्थ स्वरूप जानने की मेरी इच्छा है सो कहिये।

उत्तर–सम दृष्टि व सम वर्त्तांव यह दो पक्ष हैं। स्वप्न सृष्टि के समान सब ऊँच, नीच पदार्थों को मिथ्या जानना अथवा इनके बाध द्वारा सबका अधिष्ठान रूप एक निश्चय करना यह सम दृष्टि है और सब में एकसा व्यहार करना यह सम वर्त्ताव है। जैसे कूकर व ब्राह्मण में भेद नहीं मान करके उन में समान व्यवहार करना यह सम वर्तन लोक, वेद से विरुद्ध वल्कि असंभव है। कैसा भी तत्त्वज्ञ हो जल में स्नान करता है अग्नि में नहीं और नासका से नेत्रों का कार्य नहीं ले सकता अतः ईश्वर कर रचित भिन्न २ धर्मों वाले सब पदार्थों में समानता अति असंभव है॥१॥

ऊँच, नीच सब पदार्थों को ज्ञानदृष्टि से मिथ्या जानना अर्थात् सब जगत् को कल्पित जानते हुये सत्य स्वरूप चैतन्यात्मा को निश्चय करना यह सम दृष्टि वेद, वेदान्त सम्मति है। परन्तु मुख व मूलद्वार से सम व्यवहार करना अनुचित और दृष्ट विरोध है अतः सम वर्तन करने पर सब मर्यादाओं का विध्वंश(विनाश)होता है। जो कदाचित ईश्वर को सम वर्तन कराना अभीष्ट होता तो भिन्न धर्मों युक्त पदार्थों को क्यों रचते और वेद आदि में मर्यादा को क्यों स्थापित करते। इस से यह निश्चय हुआ कि विद्वान समदृष्टि होता है समवर्ती नहीं॥२॥

प्रिय, अप्रिय व ऊंच, नीच जगत् के सब पदार्थ वास्तव से मिथ्या हैं और ब्रह्मात्मा भेद रहित सर्वत्र चैतन्यमात्र पूर्ण हैं इस लिये विद्वान् सौगन्ध के समान सर्वथा पदार्थों को असत्य जानता है जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मण मदिरा से ग्लानि मानता है तैसे ब्रह्मवेत्ता सब प्रपंच को कल्पित रूप एक समान असत्य निश्चय करता है, जब भोजन के ग्रास नासिका में ठूसने असंभव हैं तब सब जगत में समवर्त्ताव कैसे संभव है॥३॥

स्थिरास्थिर शरीरेषु रम्यारम्भेषु वस्तुषु। न हृष्यति ग्लायति वा सदा समतयेद्धया ॥४
जगत्जरत्तृण लवो विषं चामृतमेवच। तृणः कल्प सहस्रंच सममातत् चेतसाम् ॥५
आकाशवद्नन्तो हं घटवत्प्राकृतं जगत्। इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥६
मय्यनंत महाम्भोधौ विश्वपोत इतस्ततः। भ्रमति स्वान्त वातेन न ममास्त्य सहिष्णुता ॥७
मय्यनन्त महाम्भोधो विश्वं नाम विकल्पना। अति शांतो निराकार एतदेवाहमास्थितः ॥८

देव पुरुषकी देहमें, और तिनोंके भोग। एक बुद्धिकर दृष्टिसम, मोद रोष नहिं होग॥
पूर्णातम है सब इक,जगत तृणों सम जान। महाभ्रमी विषकल्पतृण,निश्चय एक समान॥
अनन्त आतम तुल्यनभ, घटसमजगतउपाधि।निश्चययह अद्वैतजब,ग्राह्य त्याज्य सबबाध।
अनन्त वारिध रूपमम,इकरस नहीं विलाय। वायु कर्मके वेगसे, नौका विश्व भ्रमाय॥
ब्रह्म समुद्रहि अचल मैं,जगतकल्पना होइ। निराकारहूँ शांत इक,यह निश्चय समजोइ।

प्रश्न—ऊंच, नीच सब पदार्थों को किस रीति से सम जानना उचित है?

उत्तर—सत्व प्रधान व चिरंजीवी देवता व सिद्ध और तुच्छ पशु, पत्ती, कीट आदि जीवोंको तथा चिन्तामणि इत्यादि दिव्य २ पदार्थों एवम् नन्दन वन व मरुभूमि और रूप भयानक क्रूर स्थानों को एक समान निश्चय करता हुआ विद्वान् स्वरूप दृष्टि से हर्ष, शोक आदि भेद कल्पना को त्याग देता है परन्तु इन सब पदार्थों में सम वर्त्तन नहीं हो सकता ॥४॥

सब जगत् में एकता (सम दृष्टि) वाला विद्वान् तृण के तुल्य जगत् को तुच्छ (असत्य) और स्वप्न में देखे हुये विष को अमृत के समान तैसे एक निमेष व महाकल्प को ज्ञानदृष्टि से मिथ्या जानता है यह समदृष्टि वेद वेदान्त से प्रमाणित हुई समीचीन है और अघोरीपना करने से शास्त्र की मर्यादाएं भंग होती हैं और व्यवहार व परमार्थ का कुछ लाभ भी नहीं होता॥५

ब्रह्मात्मा आकाश के समान सम व अनंत है और प्रकृति का कार्य सब प्रपंच मिथ्या है जैसे आकाश घट आदि पदार्थों में समान है तैसे चैतन्यात्मा सब जगत् में पूर्ण एक रस है ऐसा निश्चय करना समदृष्टि कहलाती है इस लिये अद्वैत ब्रह्म में ग्रहण, त्याग भेद सर्वथा त्याज्य है ॥६॥

महा विशाल समुद्र समान चैतन्य स्वरूप मेरे में विक्षेप से जगत रूप नवका जीवों के संस्कारों के अनुसार दशों दिशा में भ्रमती है परन्तु चैतन्य में कुछ हानि व असहनता नहीं होती ॥७॥

महान् चैतन्य रूप वारिध में नाम रूप आत्मिक कल्पना मिथ्या भासती हैं वास्तव से मैं निराकार, निर्विकार, चैतन्य समुद्र में कदाचित भेद नहीं ॥८॥

अहोचिन्मात्रमेवाहमिन्द्र जालोपमं जगत् । अतो मम कथं कुत्र हेयोपादेय कल्पना॥९
त्वय्यनन्त महाम्भोधौ विश्व बीचीः स्वभावतः।उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धिर्न वा क्षतिः१०
अयं सोऽहमयं नाहं विभाग मिति सन्त्यज।सर्वमात्मेति निश्चित्य निः संकल्पः सुखीभव११
निर्ममः शोभते धीरः सम लोष्टाश्म काञ्चनः। सुभिन्न हृदय ग्रन्थिर्विनिर्धूत रजस्तमः१२
नित्यं प्रवुद्ध चित्तास्तु कुर्वतोपि जगत्क्रियाः।आत्मैक तत्त्व सन्निष्ठाः सदैव सुसमाधयः॥१३

मैं चेतन अद्वैत सम,इन्द्र जाल जग पेख।कैसे किस में भेद लखु,ग्राह्य त्याज्य किम देख ॥
तुम समुद्र गम्भीर अति,जग लहरीं पहचान।उदय स्वभाविक अस्त जग,हानिलाभ कतजान॥
यह सोमैं यह नहीं मम,भेद बुद्धि से भाग।निश्चय आतम एक सम,भिन्न कल्पना त्याग ॥
त्यागी ममता विज्ञ जिस,एक स्वर्ण पापान । ग्रन्थी चिज्जड़ दूर तिस,रज तम भेदहि हान॥
विज्ञ सर्व व्यवहार युत,नित्य एकता ज्ञान। परम समाधी जानिये,सर्वसार यह ध्यान ॥

प्रश्न—विद्वानों में ग्रहण, त्याग रूप क्रिया का अभाव शास्त्रों में लिखा है वा नहीं यह अर्थ स्पष्टता पूर्वक प्रतिपादन कीजिये ।

उत्तर—ब्रह्मवेत्ता में ग्रहण, त्याग आदि चेष्टा का अभाव नहीं होता किन्तु अपने से भिन्न पदार्थ ग्रहण व त्याग करने योग्य हैं इस भेद बुद्धि का अभाव होता है अर्थात् मैं चैतन्य एक शुद्ध हूँ और सब जगत् इन्द्रजाल की बाजी के समान असत्य है इसलिये मुझ चैतन्य में ग्रहण के योग्य वत्याग करने योग्य सब पदार्थों का अभाव है ॥९॥

ब्रह्मरूप तुझ विस्तृत समुद्र में प्रपंच रूप अनन्त लहरें उठ २ कर लय होती हैं तो भी स्वरूप में कुछ हानि नहीं होती किन्तु तू सदा मुक्त है॥१०॥

यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, वेदान्त की युक्तियों से इस भेद बुद्धि को दूर करके ज्ञान निष्ठा पूर्वक एक सत्य चिदानन्द में स्थित हो ॥११॥

अद्वैत निश्चय करके देह आदि अनात्म पदार्थों की ममता से रहित हुआ और लोहा, स्वर्ण पाषाण को स्वप्न के समान मिथ्या जान करके विद्वान् चिज्जड़ ग्रन्थी से मुक्त अद्वैत निष्ठापूर्वक शोभता है ॥१२॥

सब जगत् के बाध द्वारा ब्रह्मात्मा को एक निश्चय करना सम दृष्टि वेदान्त में वर्णित है इस अद्वैत निष्ठा को सर्वोत्तम समता जानों ऐसी दृष्टि (यथार्थ निश्चय वाला) विद्वान् मौन रह अथवा राज्य व्यवहारों को सदा किया करे, स्वरूप दृष्टि से उसकी नित्य समाधि है ॥१३॥

बद्ध पद्मासनस्थापि कृत ब्रह्मांजलेरपि। अविश्रान्त स्वभावस्य समाधिः कः कथं च वा॥१४॥
चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमुत्तमम्। तं विद्धि केवलीभावं साशुभानिवृत्तिःपरा॥१५॥
धन वासनमेतत्तु चेतः कर्तृत्व भाजनम्। सर्व दुःख प्रदं तस्माद्वासनां तनुतां नयेत्॥१६॥
प्रशांत जगदास्थांतर्वीत शोक भयेपणः। स्वस्थो भवति येनात्मा समाधि रिति स्मृतः॥१७॥
इदं वस्त्विति संवेगमाहुः कल्पनमुत्तमाः। नभोर्थं भावनं यस्य संकल्प त्याग उच्यते॥१८॥

दृढ़ आसन कर अंजुली, स्थित धर हो मौन। बिना ज्ञान विश्रांत कब, कहे समाधी कौन
लखे अकर्ता बुद्धि जब, जानो श्रेष्ट समाधि। भाव केवली परम सुख, पद विश्रान्त अगाधं
ध्येय वासना चित्त में, यही दुखों का हेतु। करता जाने आपको, तजो वासना चेत॥
नित्य ज्ञानकर युक्त जो, चित्त समाहित होइ। विघ्न जनहि सम ग्राम वन, एक ब्रह्म है सोइ॥
दृश्य अनातम बुद्धि सत, दृढ़ संकल्प कहाय। असत्य बुद्धि सब विश्वमें, निःसंकल्प बताय॥

प्रश्न--क्या आसन आदि साधनों कर नित्य समाधि होती है अथवा किसी और प्रकार से होनी संभव है, इसका यथार्थ निर्णय कीजिये।

उत्तर--पद्मासन बांधकर हाथों में ब्रह्मांजलि धारण किये हो जब तक अद्वैत ब्रह्मात्म निष्ठारूप विश्रान्ति नहीं वह लय रूप जड़ समाधि है, यथार्थ समाधि ऐक्य निश्चय है॥१४॥

मैं अकर्त्ता हूँ ऐसी सम्यक् निष्ठा परमोत्तमसमाधि हैइसको कैवल्यभाव जानो इससे अन्यथा भावनाको उत्थान समझिये अर्थात् तीन विपर्य्यवसंशय को उत्थान और अद्वैत निश्चय को नित्य समाधि योग वासिष्ठ में लिखा है इस समाधि से हरि, हर आदि भी उत्थान नहीं कर सकते अतः यह नित्य समाधि जानो॥१५॥

आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता जानना यह विपर्य्य वासना (अज्ञान) ही उत्थान व बन्धन रूप है, ब्रह्मज्ञान द्वाराइसका त्याग होनाउच्चसमाधिहै॥१६॥

अद्वैत ज्ञान से जिसका मन समाहित हुआ है उस महात्मा पुरुष के लिये निर्जन वनवगृह विक्षेप दोनोंसमानहैं यहसमाधि नित्यधारणीय हैं।१७॥

मूल संकल्प को विपर्य्य जानो इसका बाध करना राज्य योग रूप समाधि है जहां २ विद्वानों के लिये संकल्प आदि का त्याग लिखा है वहाँ मूल विपर्य्य रूप संकल्प का अभाव माना है मनका सहज धर्म संकल्प, विकल्प रूप फुरणा विदेह मुक्तितक दूर नहीं होता किन्तु यथा प्रारब्ध व्यवहारों के होते हुये भी ब्रह्मवेत्ता की सदा समाधि है इसी को निर्वाणपद भी कहना चाहिये इससे विपरीत केवल तूष्णी होकर जड़ स्थिति विद्वानों को आदरनीय नहीं॥१८॥

जीवात्म परमात्थैक्यावस्था त्रिपुटिरहिता। परमानंद स्वरूपा शुद्ध चैतन्यत्मिका समाधिः१९
ध्यातृ ध्याने विहाय निर्वात स्थित दीपवद्धयैक गोचरं चित्तं समाधिः ॥२०॥
चित्ते चैत्य दशाहीनेयास्थितिःक्षीण चेतसाम्। सोच्यते शांत कलना जाग्रत्येवसुपुप्तता२१
सत्वाववोध एवासो वासना तृण पावकः। प्रोक्तः समाधि शब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः॥२२
निर्विकार तया वृत्त्या ब्रह्माकार तया पुनः। वृत्ति विस्मरणं सम्यक् समाधिरभिधीयते॥२३
मनः प्रकाशसंमोह स्वप्न जाड्य विवर्जितः। दशां कामपि सम्प्राप्तः भवेद् गलित मानसः२४

ब्रह्म जीव द्वो दृष्टि इक, निश्चय त्रिपुटी रहित। परमानन्द स्वरूपलखि, शुद्धसमाधीसहित ॥
ध्याता ध्यानहि बाधकर, दृढ़ निश्चय जो होइ। अद्वै अनुभव रूप उर, परम समाधी सोइ॥
चित्त दृश्य से रहित वपु, चित्ताभाव परेख। कर व्यवहार सुपुप्ति रहि, शांत कल्पना देख ॥
सत्य ब्रह्म के ज्ञान से, वासन ध्येय जराय। परम समाधी जान यह, जड़हि समाधि विहाय॥
रहित विकार स्वरूप लखु, ब्रह्मभावना धार। निश्चय सर्व अभाव वृति, यही समाधी सार॥
भ्रम जड़ता सब त्यागके, मनमें ज्ञान प्रकाश। सभी वृत्तियां बाध उर, अस नहीं विश्वास ॥

प्रश्न—समाधि का स्वरूप मेरे बोध की दृढ़ता के लिये पुनः वर्णन कीजिये ?

उत्तर—सब प्रपंच के बाध द्वारा जीव को ब्रह्मरूप जानना परम समाधि है यानी त्रिपुटि के मिथ्या निश्चय पूर्वक जो अद्वैत निष्ठा है यह यथार्थ समाधि व जीवन्मुक्ति पद है ॥१९॥

ध्याता, ध्यान, ध्येय आदि को मिथ्या जान स्थित दीपक के समान संशय, विपर्यय से रहित ब्रह्मात्मा का सम्यक बोध उत्तम समाधि है ॥२०॥

यह वेद, वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है जाग्रत पुरुष के तुल्य यथा प्रारब्ध सब व्यवहारों के करते हुये विद्वान् की सुपुप्ति के समान अद्वैत निष्ठा को महान् समाधि समझो ॥२१॥

तृण के समान ध्येय वासनाओं को ज्ञानाग्नि से दग्ध (बाध) करके यथार्थ अनुभव को परम समाधि वेदान्त शास्त्र वर्णन करते हैं ॥२२॥

उत्पत्ति आदि पट विकारों से रहित अद्वैत निष्ठा रखना और प्रमा, अप्रमा आदि पांचों वृत्तियों के बाध पूर्वक अभेद ज्ञान को उत्कृष्ट समाधि जानना चाहिये तूष्णी होना (जड़) समाधि हठ योगियों की है ॥२३॥

भ्रम रूप स्वप्न व सुपुप्तिरूप जड़ता से रहित अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश होकर सब वृत्तियों के मिथ्या निश्चय पूर्वक विद्वान् की अद्भुत अन्तरीय दशा को दूसरा कौन जान सकता है ॥२४॥

दृश्यासंभव बोधेन राग द्वेपादि तानवे। रति वलोदिताया सा समाधिरभिधीयते॥२५॥
अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितः। समाधि सतु विज्ञेय सर्व वृत्ति निरोधकः॥२६॥
समाधिः संविदुत्पत्ति पर जीव एकतां प्रति। ध्यानस्य विस्मृतः सम्यक् समाधि रभिधीयदे
समाहिता नित्या तृप्ता यथाभूतार्थ दर्शिनी। ब्रह्मन्समाधि शब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः॥
अक्षुब्धा निरहंकारा द्वन्द्वष्वनुपातिनी। ब्रह्मन्समाधि शब्देन मेरोः स्थिरतरा स्थितिः॥२९

जग अत्यंताभाव जब,राग द्वेप से मुक्त। ब्रह्म अभ्यासहि ब्रह्म निज,परम समाधी युक्त॥
निश्चय मैं हूँ ब्रह्म पर,लखु मैं ब्रह्म अबाध। सब वृत्तियोंको बाधकर,निश्चय यही समाधि
जीव परमात्मा एक उर,राजयोग यह मान। ध्यानादी सब बाधजब, श्रेष्ट समाधी ज्ञान॥
रहि नित शांत व्यवहार में,सम्यक् है जिस ज्ञान। परा समाधी ब्रह्मलखु,सर्वज्ञहि यहध्यान
अहंकार बिन अचल बुध,द्वंद कालमें जा ना।निश्चय ब्रह्म स्वइष्ट निज,त्याज्य ग्राह्यदो हान

प्रश्न—मुझको प्रधान रूप राज्य योग समाधि के जानने की इच्छा हैं यह यथार्थ रीति से कहिये।

उत्तर--सब संसार के असत्य निश्चय पूर्वक राग, द्वेप आदि अन्तः-करण के धर्मों से अतीत अद्वैतरूप तुर्यापद में जो स्थिति है वह पूर्ण समाधि है इससे अन्यथा को उत्थान जानों इसको अज्ञान, विपर्य्य, ध्येयवासना और संशयरूप मूल संकल्प इत्यादि नामों से सिद्धान्तमें वर्णन कियाहै॥२५॥

मैं केवल ब्रह्म हूँ इस निश्चय द्वारा अनात्म रूप वृत्तियोंके मिथ्या होने पर नित्य मुक्त रूप चैतन्यात्मा(की)जोयथार्थस्थिति हैवहसर्वोत्तमसमाधिहै॥२६॥

जीव की परमात्मा में एकतारूप दृढ़ भावना करनी श्रेष्ट समाधि जानों अर्थात् ध्याता, ध्यान, ध्येय आदि सब त्रिपुटियों का अभाव निश्चय करके अद्वैत पद में स्थिति को सम्यक् समाधि जानना चाहिये॥२७॥

हे ब्राह्मण! परमात्मा के यथार्थ बोध द्वारा चित्त की समाहिता रूप अवस्था को कृत्यता समझो अर्थात् यथा प्राप्त व्यवहारों को करते हुए विद्वानों की ज्ञानरूप समाधि सिद्धांत शास्त्रों में प्रति पादनकी है॥२८॥

हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ट! चैतन्यात्मा को नित्यमुक्त, अच्युत, सर्वत्र व्यापक और सब विकारों से अतीत निश्चय करना सुमेरु पर्वत के समान अचल रूप समाधि है और अद्वैत निष्ठा से भिन्न जड़ रूप समाधि में जुड़ना व उत्थान होना बालकों (अज्ञानियों) का परिचय है वह विद्वानों को विलास मात्र है पहले सब कथन का भाव यह है कि ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता मुख्य समाधि है और संशय, विपर्य्य सहित कोमल ज्ञानको उत्थान समझो यह सब वेद, वेदान्त का सिद्धान्त है॥२९॥

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः। तथात्म मनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥३०
यत्समत्वं तयोरत्र जीवात्म परमात्मनोः। समस्त नष्ट संकल्पः समाधि रभिधीयते॥३१
प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं निरामयम्। सर्व शून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते॥
ब्रह्माकार मनोवृत्ति प्रवाहोऽहं कृतिं विना। संप्रज्ञात समाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासं प्रकुर्वतः॥
प्रशान्त वृत्तिकं चित्तं परमानन्द दीपकम्। असंप्रज्ञात नामायं समाधिर्योगिनः प्रियः॥३४
स्वानुभूति रसावेशाद्दृश्य शब्दावुपेक्षतः। निर्विकल्प समाधि स्यान्निवात स्थित दीपवत्॥३५

गिरे सिंधु में नौंन जव,एक रूप हो जाय। उर निश्चयदृढ़ आत्म इक,परम समाधि कहाय॥
जीव ब्रह्म इन दोउ की,समता निश्चय होइ। ध्येय नाश सब कल्पना,परम समाधी सोइ॥
चिदाभास मनबुद्धि नहिं,निर्दुःख ब्रह्मप्रभाव। ब्रह्मातम सब मुक्त जग,परम समाधि स्वभाव॥
एक ब्रह्म है वृत्ति उर, नहीं तुच्छ हंकार। ध्यान ब्रह्म अभ्यास यह, एक समाधी सार॥
मिथ्या वृत्तियाँ शान्त मन,परमानंद प्रकाश। निर्विकल्प है ध्यान यह,ज्ञानी जन की राश॥
निज अनुभव केप्रेमवश,जगसे होइ अतीत। निर्विकल्प यह ध्यानलखु,अच्युत ज्ञान पुनीत॥

प्रश्न—ज्ञानरूप समाधि को दृष्टान्तों द्वारा पुनः वर्णन कीजियेगा।

उत्तर—जैसे सेंधा नौंन को खारे समुद्र में डालने पर एकमेक होता है तैसे जीव को ब्रह्म रूप से निश्चय करना उत्तम समाधि है अर्थात् सद् युक्तियों द्वारा सब दृश्य को बाध करके अद्वैत चैतन्य में जो निष्ठा है यह श्रेष्ठ समाधि है इससे भिन्न जड़ता को वेदान्त में समाधि नहीं माना ॥३०॥

जीव ब्रह्म में अभेद भावना श्रेष्ठ समाधि है इससे भिन्न संकल्प व क्रिया का लय रूप जड़ता यह साधन आत्मिक हठ समाधि है उससे उत्थानहोना संभव है परन्तु ज्ञान रूप राजयोग समाधि से कभी उत्थानता नहीं होती ॥३१॥

विपर्य्य से रहित मन आदिका अभाव और सब भेद कल्पनाकी निवृत्ति तथा परमानन्द की स्फूर्ति यह निर्विकार रूप प्रधान समाधि है। इसी को सहज समाधि भी कहते हैं ॥३२॥

वृत्तिव्याप्ति द्वारा परिच्छिन्न अहंकार को त्याग करके एक ब्रह्म निश्चय द्वारा सब अनात्म वृत्तियों के बाध हुए अद्वैत निश्चय रूप अपूर्व समाधि है ॥३३॥

अन्तःकरण की वृत्तियों के असत्यता पूर्वक संशय रूप क्षोभ से रहित अद्वैत परमानन्द का बोध असंप्रज्ञात समाधि जानों ॥३४॥

यथार्थ ब्रह्मज्ञान से शान्त पद का अवलम्बन करते हुए सब दृश्य को मिथ्या जानकर संशय व भेद से रहित निर्विकल्प रूप नित्य समाधि विद्वानों को अभीष्ट है ॥३५॥

विज्ञोमहान्सन्सततं तिष्ठन्व्यवहरंश्चवा। असमाहिताचित्तोऽसौकदाभवति कः किल॥३६
अक्षुब्धा निरहंकारा द्वंद्वेष्वननुपातिनी। प्रोक्ता समाधि शब्देन मेरोः स्थिरतराकृतिः॥३७
सर्वदैवास्मि संबुद्धिःसर्वदैवास्मि निर्मलः सर्वदैवास्मि शांतात्मा सर्वदास्मि समाहितः॥३८

नित्यं समाहितधियः सुसमामहांतस्तिष्ठंति कार्यपरिणाम विभागमुक्ताः।
तेनासमाहित समाहित भेदभंग्या नित्योदितः क्तुस उत्तम वाक् प्रपंचः॥३९

ऊर्ध्वं पूर्णमधःपूर्णं मध्य पूर्णं शिवात्मकं। साक्षात् विधिमुखो ह्येपासमाधि परमार्थिकः॥४०

करे विज्ञ व्यवहार सब,चहे मौन हो जाय।असमाहित नहिं होइ कब,निश्चय एक स्वभाय॥
नष्ट ध्येय हों वासना, क्षोभ होइ सब शांत। गही समाधी मेरु सम, शुद्ध वपू निर्भ्रान्त॥
नित्य बोध निर्मल सदा, शांत रूप पहचान। सदा समाधी जानिये, यह निश्चय कल्यान॥
भेदबाध हो दृश्यजब,नित्य समाहित जान। उभय अवस्था रहें किम,हुआ ब्रह्मइक ज्ञान॥
ब्रह्मपूर्ण सब दृश्यमें,शिव आतम निज रूप।अनुभव विधि निषेधयह परा,समाधि स्वरूप॥

प्रश्न–व्यवहार करते हुए नित्य समाधि कैसे हो सकती है ? यह कहिये।

उत्तर–सन्यासी विचार में स्थित और राजा युद्ध, यज्ञ आदि को करता हो, स्वरूप दृष्टि से दोनों की समाधि है केवल व्यवहार में भेद है निश्चय रूप समाधि एक है ॥३६॥

संसार के क्षोभों से रहित निर्विकार दृष्टि अर्थात् मन के द्वंदों से अतीत अपने को मुक्तस्वरूप जानना यह ज्ञानियों की अचल समाधि है ॥३७॥

ब्रह्मवेत्ताओं को यह निश्चय होता है कि मैं सदा मुक्तरूप शुद्ध शान्त, निर्विकार हूँ यह विद्वानों की अचलसमाधिहै इससे भिन्न भावना उत्थानसमझो॥

संसार की भेद कल्पना से रहित मैं सदा समाहित हूँ इस निश्चय द्वारा दृश्य के सब विकारों से अतीत नित्य अद्वैत स्वरूप में स्थित रूप अचल समाधि है इसलिये ब्रह्मवेत्ता अपने स्वरूप को समाहित असमाहित दोनों पक्षों से परे भेद कल्पना से मुक्त नित्य समाधिवान् है ॥३९॥

ऊर्ध्व अधः और दशों दिशा अर्थात् चतुर्दश भवनों में ब्रह्म पूर्ण है वह केवल शिव स्वरूप शुद्ध चैतन्य है यह दृढ़ निश्चय होना परमार्थ रूप मुख्य समाधि है अर्थात् वेदान्त सिद्धान्त में विज्ञान को नित्य समाधि वर्णन किया है, तूष्णी रूप जड़ दशा सो कृत्रिम रूप जड़ समाधि बालकों (अज्ञानियों) के लिये मानी है इससे कैवल्य भाव की प्राप्ति नहीं होती किन्तु अन्तःकरण की लौकिक वासनाओं का अभाव होकर अन्तरंग साधनों के द्वारा अद्वैत निष्ठा रूप मुख्यसमाधि सो परमानन्द रूप निर्वाण पद में स्थिति है अर्थात् ब्रह्मात्मा की एकता का यथार्थ ज्ञान प्रधान रूप अचल समाधि वेदान्त में प्रतिपादन की गई है सब निगम, आगम का सिद्धान्त यह है ॥४०॥

निःस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येऽपि महात्मनः। तस्यात्म ज्ञान तृप्तस्य तुलनाकेन जायते ॥१
स्वभावादेव जानाति दृश्यमेतन्न किञ्चन। इदं ग्राह्यमिदं त्याज्यं स किं पश्यति धीरधी ॥२
अन्तस्त्यक्त कषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः। यदृच्छया गतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये॥३
साधो जगति भूतानां हृदयं द्विविधंस्मृतम्। उपादेयं च हेयं च विभागो यंतयोःशृणु॥४

इच्छा मुक्ती त्याग दी, जानत मुक्त स्वरूप। लाभ ज्ञान कर तृप्त वह, कहिये परम अनूप॥
स्वभाव दृश्यप्रपंच सब, किंचित नाहीं सत्य। धीर विज्ञ यह जानउर, ग्राह्य त्याज्य नहि रत्य॥
तजे द्वंद सब हृदय से, राग द्वेष किम वास। आतम अंतर शुद्ध लखु, हर्ष रोष नैराश॥
हृदय दोइ जग जीव सब, त्याज्य ग्राह्य हैं सोइ। गहिअन्तरीय बाह्यतजि, परमशांततब होइ॥

प्रश्न—ब्रह्मवेत्ताओंकी जो अंतरीय दृष्टि है कृपाकर उसको वर्णन करिये।

उत्तर-ब्रह्मात्मा को निश्चय करके कृतार्थ हुआ विद्वान् मुक्ती की भी इच्छा नहीं करता किंतु ब्रह्मात्मा को नित्य मुक्त जानता है अतः स्वरूप दृष्टि से उसके हृदय (निश्चय) में लौकिक, वैदिक कोई भी वासना नहीं होती ऐसे निष्काम ज्ञानी को दूसरे की उपमा कैसे दे सकते हैं ॥१॥

स्वरूप के ज्ञान पूर्वक सब दृश्य को बाध करके तृप्ती होती है, ज्ञानी के अन्तर हेयोपादेय बुद्धि नहीं रहती किन्तु निर्विकार अद्वैत पद में सदा स्थिति होती है ॥२॥

ब्रह्मज्ञानी को दैववशात् जो २ व्यवहार प्राप्त होता है उसको ध्येय वासना से रहित होकर यथोचित चेष्टा करता हुआ स्वात्मा को सदा मुक्त (अकर्त्ता, अभोक्ता) जानता है उसकी किसी पदार्थ में सत्य बुद्धि नहीं रहती ॥३॥

योग वासिष्ट आदि सिद्धान्त की उच्च २ संहताओं में हृदय, निश्चय, दृष्टि, निष्ठा, विज्ञान इत्यादि शब्दों को पर्याय (एक अर्थ वाला) वर्णन किया है और सम्वित चैतन्य को भी हृदय कहते हैं अर्थात् सब जीवों के दो हृदय हैं एक बाह्य जो व्यवहार का साधक है द्वितीय चैतन्य निश्चय पारमार्थक है, व्यवहारक हृदय वेदान्त, सिद्धान्त में प्रमाण नहीं किन्तु सम्वित (चैतन्य निश्चय रूप) मुख्य हृदय मुमुक्षुओं को जानने योग्य है, इसके प्रभाव से जन्म, मृत्यु से अतीत परमानन्द स्वरूप में स्थित होकर सब बन्धनों से रहित हुए विद्वान् को शेष कुछ कर्त्तव्य नहीं रहता किन्तु अन्तरीय दृष्टि रूप प्रधान हृदय (निश्चय) से कैवल्यभाव की प्राप्ति होती है, इसलिये उत्तम अधिकारियों को यह उचित है कि और सब भेद भावना को त्याग करके अद्वैत पद में निष्ठा कर कृतकृत्य होवें ॥४॥

संविन्मात्रं तु हृदयमुपादेयं स्थितं स्मृतम्। तदंतरेच वाह्ये च न च वाह्ये न चान्तरे ॥५
तत्तु प्रधानं हृदयं तत्रेदं समवस्थितम्। तदादर्शः पदार्थानां तत्कोशः सर्वसंपदाम् ॥६
सर्वमात्मैव कौदिष्टौ भावाभावौ क च स्थितौ। क बन्धमोक्षकलनेकिमन्यद्राम शोच्यते ॥७
शुद्धमात्मान मालिंग्य नित्यमंत स्थया धिया। यःस्थितस्तकं आत्मेहं भागोवन्धयितुं क्षमा॥८
हंतात्म ज्ञस्य धीरस्य खेलतो भोग लीलया। न हि संसार वाहीकैर्मूढैः सह समानता ॥९
आत्मैवेदं जगत् सर्वंज्ञातं येन महात्मना। यदृच्छया वर्तमानं तं निषेद्धुं क्षमेत कः ॥१०

संवित चेतन हृदयवर, अंगीकृत सब वेद। अन्तर सोई रम रहा, आतम रूप अभेद॥
प्रधान उर यह ज्ञानमय, सब पदार्थको धार। शुद्ध रूप दर्शाय सब, सुख सम्पद भंडार॥
सबजग आतम है जभी, भिन्न कैस प्रतिपाद। बन्ध मोक्ष जग कल्पना, हर्ष शोक अपवाद॥
मध्य हृदय कर शुद्धवपु, लखा जभी अद्वैताबुद्धि सत्यसे भोग किम, जगत भिन्न नहिंद्वैत॥
विज्ञ धीर बहु विषय को, बिना वासना भोग। कर्त्ता भुक्ता बुद्धि तजि, मूढ़ तुल्य नहिं होग॥
बाधजगतइक आतमा, सम्यक जिसको ज्ञान। यथा प्रारब्धहि वर्तता, पुण्य पाप सब हान॥

प्रश्न--हृदय का लक्षण पुनः वर्णन कीजिये जिससे मुझे बोध दृढ़ होवे।

उत्तर- मुख्य संवित्त (चैतन्यरूप) प्रधान हृदय स्वीकार है वही दृश्य के भीतर, बाहर साक्षी रूप से अनुस्यूत (व्यापक) है अर्थात् प्रथम हृदय ब्रह्मात्मा का ज्ञान व द्वितीय हृदय सम्वित (चैतन्य) स्वरूप है ॥५॥

मांसमय हृदय उसकी उपाधि है और अन्तःकरण भी पर प्रकाश होने से व्यवहारिक हृदय है परन्तु अभीन्तर मुख्य हृदय परमार्थ चैतन्य है ॥६

सब जगत को बाध करके ब्रह्मात्मा को अद्वैत निश्चय करते हुये, भाव अभाव, रूप सब जगत को विद्वान् सत्य नहीं जानते अर्थात ब्रह्मात्म चैतन्य में बन्ध, मोक्ष आदि सब कल्पना आरोपित है, बोध की दृढ़ता तक उपदेश की सफलता है ॥७॥

त्रिपुटि रूप संसार को मिथ्या जान लेने पर आत्मज्ञान से आवर्ण भंग होकर अद्वैत पद में निष्ठावाले विद्वानों को बन्ध की आशंका नहीं रहती ॥८

हर्ष का अवसर है कि आत्मज्ञानी प्रवृत्ति दशा में अनेक भोग विलासों को भोगता हुआ भी अज्ञानियों के समान नहीं होता। किन्तु स्वात्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता जान करके स्वयं परमानन्द में मग्न और अज्ञानियों को तीनों तापों से तप्ता देखकर मन में विशेष विसमय करता है ॥९॥

जिस महात्मा पुरुष ने सब जगत को मिथ्या और ब्रह्मात्मा को अद्वैत निश्चय किया है उसको शास्त्रों के विधि, निषेध का अवसर नहीं किन्तु ज्ञान दृष्टि (अन्तर निष्ठा) के प्रभाव से पुण्य, पाप आदि से रहित हुआ ज्ञान के द्वारा विद्वान सदा असंग (निर्लेप) रहता है ॥१०॥

कर्म्म नैष्कर्म्य निर्बन्ध भावा देहस्थ योगिनः।संयोगायोग विरहादह मासे यथा सुखम्॥११
प्रकृत्या शून्य चित्तोयः प्रमादाद्भाव भावनः। निद्रितो बोधित इव क्षीण संसरणोहि सः॥१२
अन्तर्विकल्प शून्यस्य बहिः स्वच्छंदं चारिणः। भ्रान्तस्येव दशास्तास्तादृशा एव जानते॥१३
न कदाचिज्जगत्यास्मिंस्तत्त्वज्ञो हंत खिद्यति। यत एकेन तेनेदं पूर्णं ब्रह्माण्ड मण्डलम्॥१४

कर्म अकर्महिं अहंकृत, देह संग युत होइ। रहि संयोग वियोग सम, नहीं दुराग्रह कोइ॥
स्वभाव निश्चय चित्त विन,प्रारब्धहिं अनुसार। मूल भावना नींद उठ,बाध हुआ संसार॥
आतम दृष्टि भेद विन,बाह्य क्रिया बहु भान। शरीर यात्रा अज्ञसम,विज्ञ दशा तिसजान॥
हर्ष बहुत इस जगत में,ब्रह्म वित्त नहि खेद। ब्रह्म पूर्ण यह विश्व वपु,होइ दृष्टि नहीं भेद॥

प्रश्न--ब्रह्मवेत्ता को किये हुये कर्म बन्धन क्यों नहीं करते यह स्पष्टता पूर्वक कहिये।

उत्तर--देहाभिमानी मनुष्यों को कर्मों का करना अथवा त्याग दोनों बन्धन रूप हैं अर्थात् शुभ कर्मों के करने से स्वर्ग को भोगकर अज्ञानी मृत्यु लोकमें आता है और निषिद्ध कर्मों के होने पर नरक भोगता और अनेक योनियों में कष्ट पाता है परन्तु देह आदि के संबन्ध (अहंकार) से रहित हुये कर्मों का अनुष्ठान व त्याग बन्धन नहीं करता ॥११॥

स्वभाव (स्वरूप दृष्टि) से जगत् को मिथ्या जानकर ज्ञान की विस्मृति काल में बाधतानुवृत्ति द्वारा व्यवहारों के होते हुये भी निद्रा से जागे पुरुष के समान विज्ञों को आत्म दृष्टि से संसार बन्ध का अभाव होता है ॥१२॥

अन्तर (आत्म दृष्टि) से निर्विकल्प निश्चय और व्यवहार दशा में पूर्वले संस्कारों के अनुसार अज्ञानी के तुल्य व्यवहार करते हुये विद्वान्की अद्भुत दशा (दृष्टि) को ब्रह्मवेत्ता जानता है क्योंकि सब ज्ञानियों का निश्चय एक होता है, अतः वह अपने निश्चय के सदृश सब विद्वानों की निष्ठा जानता है ॥१३॥

अज्ञानी इस दृष्टि (निश्चय) से शून्य ब्रह्मवेत्ता की अन्तर्दशा को कदा-चित नहीं जानता, आत्म दृष्टि के प्रभाव से अलिप्त हुआ ज्ञानी सांसारिक दुःखों (बन्धनों)से मुक्त होता है। पहिले कथन का भाव यह है कि अज्ञानी मनुष्य सर्वथा बन्धन सहित है और ज्ञानी सब कुछ करता भी सदा असंग (मुक्त स्वरूप) है। अतः मुमुक्षुओं को यह उचित है कि प्रयत्न द्वारा ब्रह्मात्म तत्व को निश्चय करते हुये कृतार्थ होवें, कैवल्य मुक्ती के लिये और द्वितीय उपाय विद्यमान नहीं है ॥१४॥

बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते। भोग मोक्षनिराकांक्षी विरलोहि महाशयः ॥१५॥
वाञ्छा न विश्व विलये न द्वेपस्तस्य च स्थितौ।यथा जीविकया तस्माद्धन्य आस्ते यथासुखम्
समाधानासमाधान हिताहित विकल्पनाः शून्यचित्तो न जानाति कैवल्यमिवसंस्थितः१७
निर्ममो निरहंकारो न किञ्चिदिति निश्चतः। अंतर्गलित सर्वाशः कुर्वन्नपि करोति न ॥१८
क धर्म्मः कचवाकामःकार्थःकचविवेकिता। क द्वैतं कच वाद्वैतं स्वमहम्नि स्थितस्यगे॥१९

इष्ट भोग को चहें बहु,किसी मोक्ष की आश।भोग मोक्ष से रहित वपु,विज्ञ मुक्त की राश॥
जगत नाश की आश तज,होते नहीं गिलान। यथा प्रारब्धहि वर्तता,धन्य सुख की खान॥
अहं रहित लखि शून्य मन,नहीं हिताहित भेद।रहि समाधि विक्षेप सम,केवल निष्ठा वेद॥
मिथ्या सब मम अहंयह,ध्येय वासना त्याग।करता सब कुछ विज्ञ जन,लेप छेप गयभाग॥
स्थित महिमा ब्रह्म में, कहां अर्थ पुनि काम। कहां द्वैत अद्वैत मति,ज्ञान धर्म निष्काम॥

प्रश्न--विद्वानों व अज्ञानियों के निश्चय व व्यवहार का क्या भेद है।

उत्तर--जगत् मण्डल में संसारी (अज्ञानी) मनुष्य सदा भोगों कोचाहते हैं और मुमुक्षुजन नित्य मुक्ती की इच्छा रखते हैं परन्तु ब्रह्मवेत्ता सब जगत् का अत्यंताभाव और आत्मा को सदा असंग जानता है, इसलिये वह भोग, मोक्ष दोनों की वासना से अतीत आनन्द स्वरूप में स्थित होता है ॥१५॥

पहिले कहे निश्चय के प्रभाव से विद्वान् संसार के नाश की इच्छा और उसकी स्थिति में द्वेष नहीं करता। वेदान्त शास्त्रोंमें लिखा है कि सब ज्ञानियों का निश्चय एक तथा व्यवहार भिन्न २ होते हैं परन्तु वाह्य चेष्टा ज्ञानी के बन्धन का हेतु नहीं होती, अतः ब्रह्मवेत्ता सब कुछ करता भी मुक्त व धन्यवाद के योग्य है ॥१६॥

परिच्छिन्न अहंकार से रहित अद्वैत स्वरूप में निश्चय वाला विद्वान इष्ट, अनिष्ट और विक्षेप,समाधि आदि को सत्य नहीं जानता अर्थात् सब भेद कल्पना को त्याग करके राग, द्वेष आदि की वासनाओं से अतीत है कारण यह है कि ज्ञानी स्वात्मा को नित्य अकर्त्ता, अभोक्ता जानताहै।।१७॥

अहंता, ममता रहित हुआ सब जगत् का अत्यंताभाव निश्चय करके ध्येय वासनाओंसे मुक्त विद्वान् प्रारब्धवश सब चेष्टा करता हुआ भी जन्म, मृत्यु रूप बन्धनों से तर जाता है ॥१८॥

स्वमहिमा रूप निर्विकार पदमें स्थित विद्वान् वर्णाश्रमक धर्मों (व्यवहारों) को सत्य नहीं मानता, अतः राग, द्वेप रूप राजस, तामस वृत्तियों से अतीत सदा मुक्त है बल्कि सब स्वार्थ को और अन्तर दृष्टि से वैराग्य, अभ्यास आदि को भी आरोपित निश्चय करता है ॥१९॥

क मृत्युर्जीवितंवा क लोकाःमास्य कलौकिकम्। कलयःक समाधिर्वा स्वमहिम्नि स्थितस्यमे
क शास्त्रं कात्म विज्ञानं कवा निर्विपयं मन। क तृप्तिः क वितृष्णत्वं गत द्वंदस्य मे सदा॥
क विक्षेपः क चैकाग्रयं क निर्बोधः क मूढ़ता। क हर्षः क विपादो वा सर्वदा निष्क्रियस्य मे
क प्रारब्धानि कर्म्माणि जीवन्मुक्ति रपि क वा। क तद्विदेह कैवल्यं निर्विशेपस्य सर्वदा॥ ३

जीवन मरणा किसी विधि,लोक विलोकहि नाहि। लय समाधि विक्षेपता,ब्रह्मनिष्ठमें काहि॥
मूल वासना तजी मन,कहां शास्त्र अरु ज्ञान। कहां तोप वैराग पुनि, द्वंद रहित विद्वान॥
क्रिया हीन है रूप मम, एकाग्रहि विक्षेप। रहे ज्ञान अज्ञान किम, हर्ष रोप नहिं लेप॥
सब धर्मों से रहित वपु, प्रारब्धहि किम मान। जीवन्मुक्ती दशा किम,विदेह मुक्ती हानि॥

प्रश्न--लौकिक,वैदिक व्यवहारों में विद्वानों की कैसी दृष्टि होनी चाहिये।

उत्तर--नित्य निर्विकार, परमानन्द स्वरूप (स्वमहिमा) में स्थित मुझ में जन्म, मृत्यु आदिके दुःख और उत्तम लोकों के दिव्य भोग कदाचित सत्य नहीं और विलय अवस्था तथा समाधि आदि लौकिक, वैदिक, व्यवहार स्वप्न सृष्टि के समान कल्पित हैं यह निश्चय (अन्तर्दृष्टि) सर्वथा श्रेयस्कर होती है ॥२०॥

निर्धर्मक व निष्क्रिय स्वरूप मेरे में लोभ व संतोप और शास्त्रों के उपदेश तथा ब्रह्मज्ञान व समाधि आदि कोई भी सत्य नहीं किंतु मैं सदा निर्द्वन्द स्वरूप हूँ ॥२१॥

सब चेष्टाओं से अतीत मेरे में मन की चंचलता व निरोध और ब्रह्मज्ञान तथा मूर्खता एवम् हर्ष, विपाद कोई भी पदार्थ सत्य नहीं किंतु मैं एक शान्त स्वरूप ब्रह्मात्म नित्य मुक्त हूँ ॥२२॥

निर्विशेप (सब सम्बन्धों से अतीत) मेरे में कर्मों का सद्भाव और प्रारब्ध शेप रूप हेतु से होने वाली जीवन्मुक्ती दशा सत्य नहीं तैसे विदेह मुक्ती भी कल्पित है, पहिले सब कथन का सार यह है कि देह, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण के धर्मों (व्यवहारों) का मुझ अद्वैत निर्वाच्य ब्रह्ममें अवसर नहीं किन्तु केवल चैतन्य, अशब्द, निर्धर्मक और सदा निर्विकल्प स्वरूप मैं हूँ यह दृष्टि सब विद्वानों के हृदय में दृढ़ होती है इसलिये वह ज्ञान सम काल मुक्त होते हैं उनमें जीवन्मुक्त आदि की कल्पना दूसरे करते हैं और ब्रह्मवेत्ता को अन्तर दृष्टि से प्रारब्ध व लौकिक, वैदिक सम्पूर्ण क्रियाओं का अत्यन्ताभाव होता है इस निश्चय की परिपक्वता से विद्वान् कृत, कृत्य अर्थात सर्वथा निष्कर्त्तव्य, निर्वाण पद में स्थित होता है ॥२३॥

जीवन्मुक्ति विदेह कैवल्य रत्न अष्टम्

जीवन्मुक्त, लक्षण विभास (३६)

लीन, धीरपि जागर्त्ति यो जाग्रद्धर्म वर्जितः। बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते॥१
गुण दोष विशिष्टेऽस्मिन्स्व भावेन विलक्षणे। सर्वत्रसमदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥२
ब्रह्मानन्द रसास्वादासक्त चित्ततयायतेः। अंतर्बहिर विज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम॥३
विज्ञात आत्मनो यस्य ब्रह्मभावः श्रुतेर्बलात्। भवबन्ध विनिर्मुक्तः स जीवन्मुक्त लक्षणः

चेतन बुद्धी एकता, सत जाग्रत नहिं पेख। ध्येय वासना तजी लखि, जीवन्मुक्ता देख॥
जगत लक्षणहिं दोषगुण,सम निश्चय जिस होइ।कहते जीवन्मुक्त वह, भेद बुद्धि सब खोइ॥
ब्रह्मानन्दहिं प्रेम रस, चित्त धर्म को त्याग। बाहिर अन्तर ज्ञान लखि, जीवन्मुक्त सुभाग॥
श्रुति विचार हो बल घना, आतम ब्रह्म अभेद। कर्त्ता भुक्ता बन्ध तज, जीवन्मुक्त अखेद॥

प्रश्न--जीवन्मुक्ति के यथार्थ लक्षणों के जानने की मेरी तीव्र इच्छा है इसलिये अनुग्रह से उनको विस्तार सहित कहिये।

उत्तर--जिस पुरुषने जाग्रत (ब्रह्म चैतन्य) में बुद्धि का लय (एकत्व निश्चय) किया है और त्रिपुटि के सब व्यवहारों से स्वात्मा को अतीत जानता है तथा जिसका बोध मूल रूप ध्येय वासनाओं से रहित हैं ऐसे लक्षणों वाला मनुष्य जीवन्मुक्त है ॥१॥

इष्ट पदार्थों की प्राप्ति व अनिष्ट वस्तुओं के सम्बन्ध हुए जिसके हृदय (निश्चय) में कुछ हानि,वृद्धि नहीं होती किन्तु सबको स्वप्न समान जानता है यानी प्राकृत मनुष्यों के तुल्य यथाप्रारब्ध सब व्यवहारों को करते हुए वास्तविक सम्पूर्ण क्रियाओं व विकारों से अतीत ब्रह्म स्वरूप को जानना जीवन्मुक्ति दशा वेदान्त सिद्धान्त में वर्णन करी है ॥२॥

परमानन्द स्वरूप में एकत्व को प्राप्त होकर बाहर, अन्तर सब पदार्थों व जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और लौकिक, वैदिक सब व्यवहारों को ज्ञान दृष्टि से बाध करके स्वात्मा को कर्तृत्व, भोक्तृत्व से परे शुद्ध असंग निश्चय वाले को जीवन्मुक्त कहना चाहिए ॥३॥

वेद, वेदान्त और सद्गुरु के उपदेश रूप युक्तियों द्वारा अभ्यास में तत्पर हो ब्रह्मात्मा को अभेद निश्चय करके विपर्य्य सेरहित बोध की प्राप्ति जीवन्मुक्त के लक्षण समझो अर्थात् अद्वैत निश्चय युक्त विद्वान् किसी वर्णाश्रम व अवस्था में स्थित हो और यज्ञ, युद्ध आदि कैसे ही व्यवहारों को करता रहे, उसको सदा जीवन्मुक्त पद में आरूढ़ जानो, सब लेख का भाव यह है कि ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता जीवन्मुक्तों के लक्षण हैं ॥४॥

देहेन्द्रियष्वहंभाव इदंभावस्तदन्यके । यस्यनोभवतः क्वापिस जीवन्मुक्तइष्यते ॥ ५ ॥
न प्रत्यग्ब्रह्मणो भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः। प्रज्ञयायो विजानाति स जीवन्मुक्त लक्षणः॥६॥
जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्म वित्तमः। उपाधि नाशाद्ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम्॥७
बोधेक निष्ठतां यातो जाग्रत्येव सुषुप्तवत्। य आस्ते व्यवहर्तैव जीवन्मुक्तः स उच्यते ८॥

देह इन्द्रियां अहं बिन, जगत इदंता बाध। वस्तु किसी में भेद नहि, जीवन्मुक्ति अगाध॥
आत्म ब्रह्म अरु जगत में, त्यागे भेद अशेष। ऐसा निश्चय होय दृढ़, जीवन्मुक्त विशेष॥
चेष्टा जीवत करे सब, ज्ञानी मुक्ता जान। बाध उपाधी लखीं तिस, ब्रह्म रूप पहिचान॥
करे सर्व व्यवहार जो, जाग्रत जागे नाहिं। निर्विकार आतम लखे, निश्चय मुक्ती आहि॥

प्रश्न—जीवन्मुक्तोंके लक्षण अधिक जाननेकी मुझे इच्छा है सो कहिये।
उत्तर--देह, इन्द्रिय आदि पदार्थों में अहंता रहित और प्रपञ्च में इदन्ता
से वर्जित अर्थात् देखे व सुने हुये सांसारिक सब पदार्थों में भेद बुद्धि से
अतीत तथा ब्रह्मात्म को नित्य अकर्त्ता, अभोक्ता निश्चय करने वाला जीव-
न्मुक्त है ॥५॥

जो पुरुष आत्मा व ब्रह्म और जगत् में किंचित् भेद नहीं जानता ऐसे
अनुभव वाला विद्वान् जीवन्मुक्त कहलाता है अर्थात् वेद, वेदान्त में तत्व
ज्ञान की दृढ़ता ही जीवन्मुक्त का लक्षण वर्णन किया है ॥६॥

ब्रह्मात्मा के अद्वैत ज्ञान द्वारा माया, अविद्या आदि सब उपाधियों का
अत्यन्ताभाव निश्चय करने वाला ज्ञानी समस्त व्यवहारों को करता हुआ
भी सदा मुक्त (कृतार्थ) है उस के लिये और कुछ कर्तव्य नहीं है कारण यह
है कि अद्वैत निश्चयके प्रभावसे विद्वान् सदा जीवन्मुक्त पदमें स्थितहोताहै॥७॥

देह आदि में अभिमान रहित व स्वात्मा को कर्तृत्व, भोक्तृत्व से वर्जित
और जगत् की भेद भावना से मुक्त सुषुप्ति के तुल्य अद्वैत दृष्टिवाला
विद्वान् सब व्यवहारों को करता हुआ राजा जनक के समान जीवन्मुक्तमाना
जाता है और जो यह कहते हैं कि सब क्रियाओं को त्याग कर जीवन्मुक्त
होता है सो कथन अयोग्य है क्योंकि प्रारब्ध रूप निमित्त से देह व अन्तः
करण आदि व उन के धर्मों के विद्यमान हुये ही जीवन्मुक्ती सिद्ध होती
है वरन् विदेह मुक्ती हो जानी चाहिये, सब कथन का स्पष्ट भाव यह है
कि ब्रह्मात्मा को असंग, मुक्त जानने वाले सब ब्रह्मवेत्ताओं को वेदान्त
सिद्धान्त में जीवन्मुक्त वर्णन किया है ॥८॥

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते । यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते॥९
यद्वीभिर्विजिगीषाभिः कृपणाविव तिष्ठतः । जीवन्मुक्तावपि गुरू लोके शुक्र बृहस्पती ॥१०
बल प्रह्लाद नमुचि वृत्रांधक मुरादयः । जीवन्मुक्ताः स्थितिं चक्रुर्वीतरागाः स रागवत ॥११
यस्य याहं कृतो भावो यस्य बुद्धिर्न लिप्यते । कुर्वतो ऽकुर्वतोवापि स जीवन्मुक्त उच्यते॥१२

जाग्रत में अद्वैत थिर, मिथ्या जाग्रत जान । मूल वासना तजी सब, जीवन मुक्त सुजान ॥
शुक्र बृहस्पति उभय गुरु, हार जीत के काज । असुर देवके पक्ष युत, जीवन्मुक्त सुसाज ॥
वृत्रासुर मुर अंधका, दानव राक्षस घोर । बल प्रह्लादहि नमुचि पुनि, जीवन्मुक्ति बहोर ॥
नहीं अहंता कदाचित, कर्त्ता बुद्धि अभाव । असंग निश्चय क्रियामें, जीवन्मुक्ति स्वभाव ॥

प्रश्न—अभ्यास में तत्पर विशेष निवृत्ति वाले को जीवन्मुक्त कहना चाहिये, व्यवहार करते हुये जीवन्मुक्ती कैसे संभव हो सकती है यह संशय मेरा निवृत्त कीजिये ।

उत्तर—तत्व ज्ञान के दृढ़ हुये पश्चात् जैसी प्रारब्ध होती है वैसे व्यवहारों को करना पड़ता है केवल ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता जीवन्मुक्त का लक्षण है अर्थात् सुषुप्ति सम (अद्वैत दृष्टि) विद्वान् सब व्यवहारों को करता वास्तव से जाग्रत धर्मों से अतीत, असंग निर्विकार निश्चय सहित होता है यह जीवन्मुक्त का लक्षण है ॥९॥

शुक्राचार्य सदा असुरों की जय के लिये और बृहस्पति नित्य देवताओं के विजय प्राप्ति अर्थ उपायों को सोचते, कृपण मनुष्यों के समान अनेक ऊँच, नीच व्यवहारों को करते हुये जीवन्मुक्त हैं ॥१०॥

दैत्यराज बलि महाराज जी दश कोटि वर्ष राज्य सम्पदा को भोगते व चिरंजीवी प्रह्लाद जी कल्प तक व्यवहार करते जीवन्मुक्त हैं बल्कि घोर वृत्ति निमूच व वृत्रासुर और अन्धक इत्यादि असुर प्रकृति वालों को ब्रह्मज्ञान के निश्चय होने पर योगवासिष्ठ में जीवन्मुक्त वर्णन किया है अर्थात् यथा प्रारब्ध सब व्यवहारों को करते भी ब्रह्मात्मा को मुक्त जानना जीवन्मुक्त के लक्षण हैं ॥११॥

देह इन्द्रिय आदि में अभिमान से रहित दैववशात् सम्पूर्ण आरम्भों को करता हुआ असंग बुद्धि पुरुष मौनवृत्ति को धारण करे अथवा राज्य पालन आदि अनेक व्यवहारोंको करता रहे वह सदा जीवन्मुक्त है अर्थात् तत्वज्ञान के दृढ़ हुये पश्चात् व्यवहारों का कुछ नियम नहीं किंतु तीव्रतर प्रारब्ध वश चेष्टायें की गई जीवन्मुक्ती में बाधा नहीं करतो ॥१२॥

यस्योन्मेष निमेषार्द्ध द्विदःप्रलय संभवो। पश्येत्त्रिलोक्याः स्वसमः स जीवन्मुक्तउच्यते॥१३
शांत संसार कलनः कलावानपि निष्कलः। यःसचित्तोपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥१४

पलकचंद उठ उदय लय, कलिपतरूप विहाय। समता आतम दृष्टि जिस, जीवन्मुक्त कहाय॥
जगतसत्यता शांतलखु, देहनहीं अभिमान। चित्त भास नहिं अहं वृत्ति, जीवन्मुक्त कहान॥

प्रश्न—जीवन्मुक्तों के यथार्थ निश्चय व व्यवहारों को प्रगट कीजिये जिसकर मुझको इस अर्थ में संशय पुनः उत्पन्न नहीं होवे।

उत्तर—ब्रह्मात्मा के आधे क्षण के प्रमाद होने पर स्वप्न सृष्टि के समान अनेक रचना की प्रतीत होती है और तत्त्वज्ञान कर सबकी असत्यता होती है ऐसा निश्चय जिसके दृढ़ है वह जीवन्मुक्त है ॥१३॥

सब जगत की सत्यता को त्यागकर विद्वान अज्ञानी मनुष्यों के समान सब व्यवहारों को करता हुआ अर्थात प्रारब्ध वश चित्त (अहंकार) सहित यानी देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण से सात्त्विक, राजस आदि चेष्टाओं को करने वाला आत्मदृष्टि के प्रभाव से जीवन्मुक्त कहलाता है और वेदान्त में जहां ज्ञान रक्षा आदि साधन व आनन्द प्राप्ति रूप प्रयोजन जीवन्मुक्ती के लिखे हैं वह अकृतउपासक (कोमल ज्ञानी) के लिये हैं दृढ़ ज्ञानी को वेदान्त आदि शास्त्रों में कृत, कृत्य व निष्कर्तव्य वर्णन किया है तो साधनों व प्रयोजन का ब्रह्म ज्ञानी में अवसर कहां है ॥१३॥

तैसे ही मनोनाश, वासनाक्षय, तत्त्वज्ञान का अभ्यास यदि ज्ञान के प्रथम नहीं हुआ तो ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता नहीं हो सकती यदि पूर्ण रीति से वह कर लिये गये तब उनका पुनः अभ्यास निरर्थक होगा और जीवन्मुक्ती के आनन्द को स्वरूप से भिन्न माने तो वह अनात्म दुःखरूप होगा, स्वरूपा-नन्द ज्ञान काल में प्राप्त होता है तब पुनः उसकी इच्छा असम्भव है। विचार से देखें तो विद्वान् को अनेक श्रुतियां ब्रह्मस्वरूप वर्णन करती हैं। फिर वह किसका व कैसे अभ्यास करेगा। द्वितीय अन्तःकरण आदि का ब्रह्मानन्द विषय नहीं अतः असाध्य कार्य में बुद्धिमान प्रवृत्ति कैसे हो सकता है। आवर्ण का भंग ज्ञान काल में हो चुका है, अभ्यास से जड़ता आदि का मानना वदतो व्याघात दोषों सहित अति असम्भव है जैसा अभ्यास होता है, वैसी गति होती है इस से स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मज्ञानी नित्य स्वरूपानन्द में अभेद होता है कारण यह है कि जीवन्मुक्ती का आनन्द यत्न साध्य नहीं ॥१४॥

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः। चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते॥१५
यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः। परमानन्द पूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते १६
इदं जगदयं सोयं दृश्य जातमवास्तवम्। यस्य चित्तेन स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१७
यः समस्तार्थ जालेषु व्यवहार्यपि शीतलः। परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१८
राग द्वेष भयादीनामनुरूपं चरन्नपि। योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१९

अहं ब्रह्मअरु ब्रह्म मैं,ब्रह्महि ज्ञान दृढ़ाय। चिद आतम पुनि अहं चिद,जीवन्मुक्त कहाय॥
देह आदि मिथ्या सभी, ब्रह्म भावना धार। व्यापक परमानन्द लखि, जीवन्मुक्त सुचार॥
यह जग सो मैं है नहीं, दृश्य सभी है झूठ। चित्त भेद नहिं जिसी के, जीवन्मुक्त अनूठ॥
सब व्यवहारों युक्त भी, संशय भरम अतीत। धर्म देह लखि कल्पना,जीवन्मुक्त सुचीत॥
राग द्वेष भय शोक सब, कर्त्ता विघ्न अचार। नभवत् शुद्ध स्वरूप लखि, जीवन्मुक्त अपार॥

प्रश्न—ब्रह्म चैतन्य के अभ्यास करके जीवन्मुक्त की दशा कैसे होती है।

उत्तर—मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ अथवा ब्रह्म चैतन्य मैं हूँ इस ओतपोत दृष्टि व अभ्यासकर विद्वान् अपना स्वरूप चैतन्य निश्चय करता है अर्थात् मैं चैतन्य ब्रह्म हूँ अथवा मेरा वास्तव स्वरूप अद्वैत चिदात्मा है इस निष्ठा सहित ज्ञानी को शास्त्रों में जीवन्मुक्त वर्णन किया है ॥१५॥

देह, इन्द्रियाँ अन्तःकरण आदि के धर्मों सहित जगत् को असत्य निश्चय करके सब में व्यापक अद्वैत परमानन्द मैं हूँ इस निश्चय संयुक्त विद्वान् को जीवन्मुक्त कहना चाहिये। और जीवन्मुक्ती के आनन्द को न्यूनाधिक व आने जाने वाला यत्न साध्य तथा अपने से भिन्न मानने वाला सिद्धान्त से बहुत दूर रहता है स्वरूपानन्द की प्राप्ति ज्ञानकाल में वेदान्त लिखते हैं पुनः उसकी इच्छा व प्रयत्न असम्भव है ॥१६॥

परोक्ष व प्रत्यक्ष रूप जगत वास्तव से तीनों कालों में हुआ नहीं किन्तु अद्वैत ब्रह्म चैतन्य अपना स्वरूप है ऐसी निष्ठा वाले विद्वानों को वेद, वेदान्त में जीवन्मुक्त वर्णन किया है ॥१७॥

यथा प्रारब्ध व्यवहारों को करता हुआ उन सबको अन्तःकरण आदि का धर्म जानकर अद्वैत निश्चययुक्त विद्वान जीवन्मुक्त पद में स्थित है ॥१८

दैववशात् जीवत्काल तक बाह्य दृष्टि से इष्ट में राग और अनिष्ट वस्तुओं में द्वेष तथा मारानक जीवों से भय एवम् पूर्वापर का चिंतन करता हुआ विद्वान् अन्तर (आत्म) दृष्टि से स्वरूप को सदा शुद्ध, असंग जानने वाला जीवन्मुक्त है। अर्थात ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता जीवन्मुक्त का लक्षण है ॥१९॥

देहेन्द्रियेष्वहं भाव इदंभावस्तदन्यके। यस्यनोभवतः क्वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२०॥
सर्वाधिष्ठान चिन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि। यो जीवति गत स्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिःप्रज्ञेतिकथ्यते। सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते२२
सर्वेच्छाः सकलाः शंकाः सर्वेहाः सर्व निश्चयाः। धियायेन परित्यक्ताःस जीवन्मुक्त उच्यते
मौन वान्निरहंकारो निर्मानो मुक्त मत्सरः।यः करोति गतो द्वेगःस जीवन्मुक्त उच्यते।२४
हर्षामर्ष भय क्रोध काम कार्पण्य दृष्टिभिः। न हृष्यति न ग्लायति यःस जीवन्मुक्त उच्यते

देह आदि अहंकार विन, सबही भय मिटाय। सत्य बुद्धि नहिं जगतमें, जीवन्मुक्तकहाय ॥
अधिष्ठान है एक चिद, सबही भेद मिटाय। संशयविन जो जीवता, जीवन्मुक्त कहाय ॥
भेद तजे चैतन्य वृत्ति,विज्ञ कहीजे सोइ। जिसकी ऐसी बुद्धि नित, जीवन्मुक्ता होइ ॥
मूल वासना तजे सब, संशय होय विनाश। त्यागी वासन ध्येय जिस, जीवन्मुक्तनिराश॥
वह मौनी मद मान तज,ईर्षा परिहर मुक्त। भ्रान्ति विना व्यवहार सब,सोई जीवन्मुक्त॥
हर्ष क्रोध भय शोक युत, उर नहि प्रेम गिलान। जीवन्मुक्ता जानिये, निज स्वरूप नहि हान

प्रश्न—जीवन्मुक्तों की सब दशा मेरे अनुभव के दृढ़तार्थ वर्णन कीजिये।

उत्तर--स्वदेह, इन्द्रिय आदि में अभिमान से रहित और जगत में इदंता बुद्धि से वर्जित अर्थात् संसार में सत्यता व शरीर आदि में अहंता को त्याग करके अद्वैत निश्चय वाला विद्वान जीवन्मुक्त कहाता है ॥२०॥

सब प्रपंच के अधिष्ठान शुद्ध चैतन्य (केवल निर्विकल्प) स्वरूप में स्थित होकर राग, द्वेष आदि मन के धर्मों को अपने आत्मा में सत्य नहीं जानना जीवन्मुक्ती दशा है ॥२१॥

शुद्ध चैतन्य, निर्विकल्प (भेद व संशय रहित) हो, विद्वान् के हृदय (निश्चय) में अद्वैत ज्ञान है वह स्थितप्रज्ञ (जीवन्मुक्त) कहा जाता है ॥२२॥

सब संसार का अभाव निश्चय करके ज्ञानी इच्छा आदि से अतीत और सब संशयों से मुक्त होता है अतः ब्रह्मात्मा के यथार्थ जानने वाले को जीवन्मुक्त कहना चाहिये ॥२३॥

अहंता, ममता से रहित व ईर्ष्या आदि दोषों से वर्जित, मौनी (अन्तर्मुख) सदा चैतन्यात्मा के अपरोक्ष अनुभव वाला पुरुष जीवन्मुक्त होता है॥२४॥

पतित प्रवाह सब कार्यों को करता हुआ अर्थात् हर्ष, क्रोध, भय, इच्छा आदि अन्तःकरण के धर्मों से संयुक्त प्रतीत होता भी वास्तव से ब्रह्मात्मा चैतन्य को सर्व धर्मों से अतीत नित्य मुक्त निश्चय वाला विद्वान जीवन्मुक्त कहलाता है, सब कथन का सार यह है कि अद्वैत, निर्धर्मक स्वरूप ब्रह्म के ज्ञाता को जीवन्मुक्त वेद, वेदान्त ने वर्णन किया है ॥२५॥

जीवन्मुक्त, वर्ताव विभास (३७)।

विहरन्नपि संसारे जीवन्मुक्त मना मुनिः। आदि मध्यांत विरसा विहसेज्जागतीर्गतीः॥१
पूर्णां दृष्टिमवष्टभ्य ध्येय त्याग विलासिनीम्। जीवन्मुक्ततया स्वस्थो लोके विहर राघव॥२
उदारः पेशलाचारः सर्वाचारानुवृत्तिमान्। अंतः सर्वपरित्यागी लोके विहर राघव॥३
प्रविचार्य दशाः सर्वा यदतुच्छं परं पदम्। तदेव भावेनालंब्यलोके विहर राघव॥४
अंतः संत्यक्त सर्वाशो वीतरागो विवासनः। वहिः सर्व समाचारो लोके विहर राघव॥५
अंतर्नैराश्यमादाय वहिराशोन्मुखेहितः। वहिस्तप्रान्त राशीतो लोके विहर राघव॥६

विचरे जीवन्मुक्त जग, मनकर सब व्यवहार। जानें नीरस काल त्रय, हँसता जगत मझार॥
पूर्ण दृष्टि विशाल जग, करे ध्येय मन त्याग। पाकर जीवन्मुक्त पद, व्यवहारहि उर जाग॥
तात श्रेष्ठ आचारयुत, चेष्टा रागी धार। अंतर आतम त्याग नित, करो जगत व्यवहार॥
लोक परमार्थ भली विधि, कर विचार अभिराम। सत्य ब्रह्मको धरो उर, क्रियामुक्त विश्राम॥
अंतर आशा त्याग सब, राग द्वेष आचार। सभी वासना मूल तजि, करो धर्म व्यवहार॥
निश्चय अंतर निरसता, बाहिर आशावान। इष्ट वियोगहि शोक मन, शीतल आतम जान॥

प्रश्न—जीवन्मुक्त के जैसे २ वर्ताव शास्त्रों में वर्णन किये हैं वह कहिये।

उत्तर—मनन शील जीवन्मुक्त पुरुष तीव्रतर प्रारब्ध के अनुसार यथोचित सब व्यवहारों को करता हुआ ज्ञान दृष्टि से जगत को आदि, मध्य, अन्त में निरस (असत्य) जान करके संसारी जीवों को अनिर्वचनीय, शोचनीय दशा देख हँसता है अर्थात ज्ञान से शून्य प्रमादी जीवों की अवनति पर विस्मित होता है॥१॥

हे तात! पूर्ण ब्रह्म दृष्टि को आश्रय कर हृदय से विपर्य्य वासनाओं को त्याग कर जीवन्मुक्त पद में स्थित हुए सब चेष्टाओं को करो॥२॥

हे राघव! बाह्य व्यवहार दशा में अन्य जीवों के समान सब २ वर्णाश्रम के अनुसार सम्पूर्ण क्रियाओं को सदा करते हुए अन्तर निश्चय से स्वप्न के तुल्य असत्य जान करके जीवन्मुक्त पद में स्थित हो॥३॥

लौकिक, वैदिक सब व्यवहारों को करते हुए अनुभव दृष्टि द्वारा मिथ्या जान करके सदा जीवन्मुक्त पद में विश्राम करो॥४॥

हे राम जी! अन्तर (आत्म) दृष्टि पूर्वक सब मूल वासनाओं को परित्याग अर्थात सब जगत में सत्य बुद्धि व देह आदि में अहंकार और आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व को निवृत्ति करके अपने वर्णाश्रम के अनुसार चेष्टा करो॥५

ब्रह्मदृष्टि द्वारा सब वासनाओं से मुक्त हो संसार दशा में इष्ट में राग व अनिष्ट पदार्थों का त्याग करते हुए हे राम जी तुम सदा निर्लेप रहोगे॥६॥

त्यक्ताहं कृति राश्वस्त मतिराकाश शोभनः। अगृहीत कलंकां को लोके विहर राघव॥७॥
अबद्धस्यैक रूपस्य सर्वगस्यात्मनःकथम्। बन्धःस्यात्तदअभावेतु मोक्षःकस्यविधीयते॥८॥
नानन्दमेत्युपवने न खेदमुपगच्छति। न खेदमेति मरुप नानन्दमुपगच्छति ॥९॥
विहरन्नपि नोद्वेगी नानन्दमुपगच्छति। अंतमुर्क्तमनानित्यं कर्म कर्त्तव तिष्ठति॥१०॥
न विभेतिनवाधत्ते वैवश्यं न च दीनताम्। समः स्वस्थ मना मौनी धीरस्तिष्ठति शैलवत्११

त्याग अहं हो स्वास्थ मति,नहीं कलंक प्रमाद। शीतल उर में सोमवत,कर व्यवहार अह्लाद
असंग आतम बन्ध किम,पुनः मोक्ष किस होइ। अंतर निश्चय धरेवर,जीवन्मुक्ता सोइ॥
कर विहारगत वाटिका,मरू भूमि के बीच। खेद अनंदहि नहीं कुछ,बुद्धि त्याग के नीच॥
बाहिर से सब चेष्टा, भय आनन्द मिटाय। इक आतम में द्वंदकिम,अंतर मुख ठहराय॥
व्याकुलता भय दीनता,त्यागी हृदय अशोप।चित्त मौन सम धीर यह,आतम दृष्टि विशेप॥

प्रश्न–अभ्यास में लवलीन विरक्त पुरुषों को जीवन्मुक्त कहना चाहिये यानी व्यवहारी (गृहस्थी) मनुष्य जीवन्मुक्त पद के योग्य नहीं हो सकता ऐसा सुना है आप शास्त्र रीति से निर्णय कीजिये ?

उत्तर–हे रामजी ! ब्रह्मज्ञान द्वारा देहआदि में अहंता को निवृत्त (बाध) कर स्वस्थ बुद्धि, असंग दृष्टि, विपर्य्य रहित, और आकाश के तुल्य शुद्ध परमानन्द को अपना स्वरूप जानकर राजा जनक के तुल्य व्यवहारों को करते हुए तुम्हारी कुछ क्षति नहीं किंतु तुम सदा जीवन्मुक्त हो ॥७॥

ब्रह्मनिष्ठ को मिथ्या रूप सांसारिक व्यवहारों से बन्ध नहीं होता और बन्धन के अभाव हुए मोक्ष भी सम्भव नहीं किंतु तुम नित्य प्रवर्त्तनशील हुए भी मुक्त स्वरूप हो ॥८॥

जीवन्मुक्त सुन्दर बगीचों में विलास करता व मरुभूमि में स्थित हुआ ब्रह्मात्मा को सदा असंग, निर्विकार निश्चय कर सब द्वन्दों को स्वरूप में नहीं देखता किंतु स्वप्न के तुल्य इष्ट, अनिष्ट में सुखी, दुःखी होता हुआ भी बोध दृष्टि से उन सबका अत्यन्ताभाव जानता है ॥९॥

जो विद्वान् सब व्यवहारों को करता अद्वैत दृष्टि से निर्भय पदको प्राप्त होता है और खेद, आनन्द से अतीत (मुक्त) स्वरूप हुआ सदा शोभता है उसको दूसरे की उपमा नहीं दे सकते हैं ॥१०॥

जीवन्मुक्त पुरुष स्वरूप दृष्टि से भय, व्याकुलता आदि से रहित, सम, स्वस्थ, निर्वाच्य, निर्विकार स्वरूप में स्थित हुआ पर्वत के समान अचल निश्चय वाला होता है वह अन्धा व जड़ नहीं होता किंतु महान दक्ष (ज्ञान प्रयुक्त) होता है ॥११॥

विचारिणं भव्य पदं विश्रांत धियमात्मति। न हरंति विकल्पौघा जलौघा इवपर्वतम्॥१२
संग त्यागं विदुर्मोक्षं संग त्यागादजन्मता। संगं त्यजत्वं भावानां जीवन्मुक्तो भवानघ१३
जीवन्मुक्त शरीराणामपुनर्जन्म कारिणी। मुक्ताहर्ष विपादाभ्यां शुद्धा भवति वासना॥१४
न नभो घट योगेन सुरा गंधेन लिप्यते। तथात्मोपाधि योगेन तद्धर्मैर्नैवलिप्यते ॥१५॥
संविन्मात्रं जगदिति मत्वा मुदित बुद्धयः। संविन्मयत्वादंतस्थ जगत्का विहरत्यमी॥१६॥

सहित विचारहि भव्य वपु,कर आतम विश्रामाभेद बुद्धि सब वासना,उर त्यागी अभिराम
संग त्याग है मोक्ष पद,जन्म निसंग अभाव। सब पदार्थ का संग तज,जीवन्मुक्ती भाव॥
जीवन्मुक्तहि वासना, जन्म देह नहि फेर। संग बिना जो कर्म कर, शुद्ध वासना हेर॥
घटहि उपाधी योग से, नहि विकार आकाश। देह बुद्धिकर चेष्ट ही, असंग आत्म प्रकाश॥
सभी जगत् है ज्ञान वपु,समहि चित्त नहि भेद। आतम मय सब देखते,कर विहार बिनखेद॥

प्रश्न—जीवन्मुक्त को अन्तःकरण के कर्त्तृत्व,भोक्तृत्व बन्धन कैसेनहींकरते।

उत्तर—ब्रह्म विचार सहित भवमूर्त्ती(कल्याण स्वरूप)शुद्धात्मा में विश्रान्ति हुए जीवन्मुक्तों में कदाचित संशय, विपर्य्य नहीं होते जैसे जल का प्रवाह शिला को द्रवतायुक्त नहीं कर सकता तैसे देह अन्तःकरण के धर्म विद्वान् को स्पर्श (बन्धन) नहीं करते ॥१२॥

हे निष्पाप रामजी ! सब जगत् का कारण देहाभिमान है इस संग भ्रम को मिथ्या जानना ज्ञान है इसलिये सब व्यवहारों को करते हुए देह आदि में सम्बन्ध को त्याग करके सदा जीवन्मुक्त पद में स्थित हो ॥१३॥

विद्वानों को संसार चक्र से छुड़ाने वाली असंग दृष्टि है वह हर्ष, शोक आदि मानसी धर्मों से रहित शुद्ध ज्ञानरूप भावना कहाती है अर्थात्ब्रह्मात्मा के शुद्ध (असंग निश्चय)होनेपर देह निर्वाहक नेय वासना के प्रवर्त्त होते हुए भी जीवन्मुक्त पुरुष जन्म,मृत्यु से अतीत हुआ निर्वाणपदकोप्राप्तहोता है ॥१४॥

जैसे घट में स्थित सुगन्ध,दुर्गन्ध घटाकाश को स्पर्श नहीं करतीं तैसे मन आदि के उच्च, नीच व्यवहारों से शुद्ध चिदात्माकोकभीबन्धननहींहोता॥१५॥

सब जगत् के बाध निश्चय किये शुद्ध चैतन्य पद शेष रहताहै इसलिये जीवन्मुक्त यथा प्रारब्ध देह निर्वाहक सब व्यवहारों को करता हुआसदाअसंग है अर्थात परमार्थ दृष्टि से अद्वैत व गौन(विचार दृष्टि)से असंग(साक्षी)और प्राकृत दृष्टि से विद्वानों में भी क्रिया होती हैं अतः विद्वान वास्तव से सदा मुक्त स्वरूप है। इन तीनों दृष्टियों की यथार्थ व्यवस्था करने पर संशय, विपर्य्य नहीं रहते ॥१६॥

तामसंगाभिधां विद्धयावद्देहं च भाविनीम्।तया यत्क्रियते कर्म न तद् वन्धाय वैपुनः॥१७॥
सैवोक्ता संग शब्देन पुनर्जन्म कारणी। तया यत्क्रियते कर्म तद्वन्धायैव केवलम्॥१८॥
सं वेद्यो यदि चैवात्मा वेदिते लक्ष्यते समः। यथा प्राप्तानुवर्तीव तदसंगोसि राघव॥१६॥
असंगता मनायासाऽजीवन्मुक्त स्थिति स्थिराम्। अवलंब्य समःस्वस्थो वीतरागभवानघ२०
सदा समप्रेपिहि वस्तु जाले समाशयोप्यंतरदीन सत्वः।
व्यापार मात्रात्सहजात्क्रम स्थान्नकिंचिदप्यन्यदसौकरोति॥२१॥

हीन अरब्धहि कर्मलग,रूप असंग पिछान। उससे जो २ कर्मकर, होवे बंधन हानि।
पुनः जन्मकर वासना,संग विपर्यय रूप। करता उनकर कर्मजो, बंधन जान स्वरूप॥
गम्य स्वभावहि ब्रह्मलखि,यथा प्राप्त व्यवहार।असंग निश्चय करो दृढ़,हो आनंद अपार॥
असंग रहि आयास बिन,गति स्थिर पहिचान। पाप रहित सबकर्म दस जीवन्मुक्त महान॥
हने भोग विक्षेप सब,सम पदार्थ को जान। ज्ञानभाव निर्दीनता, अरब्ध कर्म प्रधान॥

प्रश्न--जीवन्मुक्त सब व्यवहारों के होते असंग कैसे रहता है यह कहिये
उत्तर--जीवन्मुक्तों (विद्वानों) में लेश अविद्या (विक्षेप शक्ति) द्वारा देह
निर्वाहक अभास रूप वासनायें होती हैं अर्थात् तीव्रतर प्रारब्ध से विदेह
मुक्ती तलक होने वाली नेय वासनायें {असंग नाम की जानों उनसे जो २
कर्म, व्यवहार किये जाते हैं वह बन्धन का हेतु नहीं होते॥१७॥
द्वितीय ध्येय वासना (विपर्य्यात्मिक) हैं वह अज्ञानियों में होती हैं उन
के होते जो कुछ भी क्रिया जावे वह सब बन्धनों का कारण है॥१८॥
हे तात्! यदि तुम्हारा निश्चय स्वयं प्रकाश ब्रह्म की लक्ष्यता सहित
होवेगा तो जगत् के सम्पूर्ण कार्यों को करते हुये भी असंग निश्चय हुये
तुम्हारे में संसाररूप बन्ध की आशंका कदाचित नहीं रहेगी॥१६॥
विना प्रयास(विपर्य्य)से रहित व्यवहार करते हुये जो असंगता दृष्टि
है वह ज्ञानियों में होती है इसी प्रकार ज्ञान दृष्टि द्वारा सब बन्धनों से तुम
अतीत हो॥२०॥
अनेक भोगों का हेतु धन, सम्पति और विक्षेप का कारण इच्छा, द्वेष
आदि राजस, तामस वृत्तियों के हुये सब जगत् में समदृष्टि होकर दीनता से
रहित स्ववर्णाश्रम के सम्पूर्ण कर्त्तव्यों को करते हुये तुम जीवन्मुक्त पद में
स्थित हो। सब प्रसंग का स्पष्ट भाव यह है कि जीवन्मुक्त के व्यवहारों का
अभाव नहीं होता किन्तु ब्रह्मज्ञान द्वारा आत्मा का अकर्त्ता,अभोक्ता निश्चय
होता है॥२१॥

तयोदितप्रसर विलास शुद्धया गत ज्वरं पदमवलंबयामलम ।
धियेद्धया पुनरिह जन्म बन्धनैर्नबध्यसे समाधि गतात्म दृश्यया ॥२२॥
नोदेति नास्तमायाति सुख दुःखे मनःप्रभा।यथा प्राप्त स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥२३
साधुभिःपूज्यमानोऽपि पीड्य मानोऽपिदुर्जनैः।सममेव भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥२४
जन्म स्थिति विनाशेपु सो दयास्तमयेपुच । सममेव मनोयस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२५
अहंकार मयींत्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः।तिष्ठतिध्येय संत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते॥२६

ज्ञान समाधी दृष्टियुत,वासन सभी जलान । शुद्ध आत्म आनन्दघन,निष्ठाजन्म सिरान ॥
उदय अस्त नहिं होइ निज,लेव दुःख सुखधार । यथा प्राप्त में तोपजिस,जीवन्मुक्त अपार
पूज्यमान होइ साधुकर, दुष्ट पीड़ बहुदेत । एक ब्रह्म दृष्टी सदा, जीवन्मुक्ता चेत ॥
जन्म स्थिति लय वृद्ध पुनि, उदय अस्त जगहोइ । इक ब्रह्मात्म दृष्टि रहि, जीवन्मुक्तसोइ
अहंकार मय वासना,दई स्वभाविक त्याग । तीन विपर्यय रहित जो, जीवन्मुक्त सुभाग ॥

प्रश्न–जीवन्मुक्तों में वासना का त्याग किस रीति से होता है यह कहिये।

उत्तर–ब्रह्म विचार से उत्पन्न होने वाली ज्ञान रूप समाधि है उसकर स्वभाविक मलिन वासनाओं की निवृत्ति होती है अतःब्रह्मनिष्ठा द्वारा अविद्या व जगत् को बाध करके सब दुःखों से रहित परमानन्द स्वरूपमेंस्थिति होती है॥२२

सुख, दुःख के प्राप्त हुये जिसके मनकी प्रभा (निष्ठा) अचल होती है वह जीवन्मुक्त है उसमें व्यवहार यथा प्रारब्ध अवश्य होते हैं ॥२३॥

सज्जनों से पूजित व दुर्जनों द्वारा पीड़ित हुये जिसका निश्चय समान रहता है अर्थात् इष्ट, अनिष्ट के प्राप्त हुये स्वरूप निश्चय से नहीं गिरता वह जीवन्मुक्त है ॥२४।

जो विद्वान् जगत के पदार्थों की उत्पति व विनाश आदि षट विकारों का अत्यंताभाव निश्चय करके सम दृष्टि होता है यानी सांसारिक सब व्यवहारों को स्वप्न सृष्टि के तुल्य असत्य जानता है वेद, वेदान्त उसको जीवन्मुक्त लिखते हैं ॥२५॥

जिसने स्वभाविक (स्वरूप दृष्टि)द्वारा अहंकारमयी मलिन वासनाओं का बाध किया है वह जीवन्मुक्त जानो और व्यवहारों की एकता(समवर्तन) होना असंभव है किन्तु उपदेश भी मुमुक्षुओं को अपने से भिन्न अन्य ज्ञाता जान कर हो सकता है । स्पष्टभाव यह है कि भिन्न २ कथन व प्रतीत को व्यवहार शास्त्रों में वर्णन किया है यानी व्यवहार तीन सत्ता में और ब्रह्म ज्ञान एक सत्ता में होता है इसलिये परमार्थ में भेद को जानने वाला अज्ञानी है तथा व्यवहार में अभेद (एकता) मानने वाला उससे बढ़कर है ॥२६॥

जीवन्मुक्ति अन्तर दृष्टि विभास (३८)।

दृष्टि सृष्टिमिमां ब्रह्मानुभवो बहु मन्यते। स्वप्न बोधात्स्व संसारो लीयते स्वप्न वद्यतः१
निश्चयोऽयम् भूतस्य कार्याकार्यविहारिणः।जाग्रतस्तिष्ठतो वापि तज्ज्ञानां तेन सत्यता ॥२॥
निश्चयेन हरिर्येन विविधाचार कारिणा। यो निष्वव तरत्युव्याम् तत्तज्ज्ञत्वमुदाहृतम् ॥३॥

दृष्टि सृष्टि यह वाद सब, विज्ञ श्रेष्ठकर चीन। जग स्वप्नेसे बोधजब, होवे जगत विलीन
समाधि निश्चय क्रियासब, प्रारब्धहि अनुसार। रूप सत्यता ज्ञानवपु, देख जनक व्यवहार
निश्चय माधव यहीधर, अवतारों को लेत। गर्भवास हो दुःख युत बन्धनका नहिं हेत

प्रश्न—जीवन्मुक्तों की अन्तर दृष्टि को मैं जानना चाहता हूँ वह कहिये।

उत्तर—वेदान्त सिद्धान्त में दृष्टि सृष्टि मुख्य मानी है उसके तीन भेद हैं अर्थात् दृष्टि (चैतन्य सम्वित)ही भ्रान्ती कर सृष्टि की नाईं हो भासती है और दृष्टि(अन्तःकरण की वृत्ति)के होते ही सृष्टि भासती है, सपुप्ति, समाधि में वृत्ति के लय हुये नहीं भासती, तीसरी सृष्टि दृष्टि है यानी ईश्वर रचित सृष्टि पहिले विद्यमानहै पीछे उसमें व्यवहार होते हैं। पहिली ज्ञान निष्ठारूप है, द्वितीय विचार दशा में होती है, तीसरी व्यवहार को सिद्ध करती है ॥१॥

हेतात! मुख्य दृष्टि को हृदय में धारण करके वाह्य व्यवहार दशा में यथोचित चेष्टा करो अर्थात् सोते, बैठते, चलते, लेते, देते इत्यादि सब-व्यवहार करते भी राजा जनक के तुल्य जीवन्मुक्त पद में स्थित होवो ॥२॥

इसी दृष्टिको हृदयमें धारणकर श्री विष्णु जी असुरोंका संहार व भक्तजनों की रक्षा करते हैं और अवतारों को धारण करने के लिये गर्भवास में आते हैं परन्तु इस दृष्टि के प्रभाव से उनको कोई भी दुःख स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! तुम भी उसी दृष्टि का आश्रय करके यज्ञ, युद्ध आदि सब कार्य्यों को करते हुये भी सदा असंग, जीवन्मुक्त पदमें स्थित होवो।

बहुधा मनुष्य जीवन्मुक्तों में क्रिया का अभाव व अन्धता, जड़ता आदि की कल्पना करते हैं यह कथन वेदान्त सिद्धान्त से विरुद्ध है अर्थात् जगत्को असत्य नहीं देखने पर अन्धवत् जीवन्मुक्तों को वर्णन किया है यानी आज तलक कोई भी जीवन्मुक्तों ज्ञान के अभ्याससे अन्धा, जड़ नहीं हुआ! बल्किजड़ भरतने रघुगणराजा को जीवन्मुक्ती दशा में स्थित हुये महान् उपदेश दिये और सृष्टि में सनतकुमार मुख्य जीवन्मुक्त हुये भी नारद आदि अनंत ऋषियों को ज्ञान आदि के प्रबल उपदेश देते भये। तो और जीवन्मुक्तों पर अन्धता आदि का आक्षेप क्यों किया जाता है ॥३॥

यो निश्चयःसुर गुरोर्वाक्यतेर्भार्गवस्य च। दिवाकरस्य शशिनःपवनस्यानलस्य च ॥४॥
येनैते भगवन् धीरा निश्चयेन महाधियः। विशोका संस्थितास्तन्मे ब्रह्म प्रब्रूहितत्त्वतः॥५॥
यदिदं किंचिदा भोग जगज्जालं प्रदृश्यते। तत्सर्वममलं ब्रह्मभवत्येतद्व्यवस्थितम्॥६॥
ब्रह्म चिद्ब्रह्म भवनं ब्रह्मभूत परंपरा॥ब्रह्माहं ब्रह्मचच्छत्रुर्ब्रह्मसन् मित्र बांधवाः॥७॥
बोधाद्वैक्यमद्वैतं यः शांतमवतिष्ठते। इच्छानिच्छादयःसर्वे भावास्तस्य शिवात्मका॥८॥

गुरुदानव पुनिदेवगुरु,सोम अग्नि रविव्यार।चेष्टा सबकी भिन्नलखि,निश्चय एकहिधार
कहो दृष्टि तुम ब्रह्म चित, जिसकर रहे विशोकाकरके निश्चयवहीमें, पावों पदहि अशोक
प्रपंच यावत जाल वपु, माया रूप असत्य। अधिष्ठान है ब्रह्म सब, शुद्ध पूर्ण इक सत्य
ब्रह्म भवन सब ब्रह्मचिति,ब्रह्म जीव समुदाय।शत्रुमित्र सब ब्रह्मलखि,निश्चयकरतुमभाय
बोध दृष्टि इक द्वैत सम, शांत रूप दर्शाय।इच्छा अनिच्छाब्रह्मसब,मुक्तहि निश्चय गाय

प्रश्न--जीवन्मुक्तों की निष्ठारूप पावन दृष्टि को पुनः वर्णन कीजिये।

उत्तर--हे रामजी! देवताओं के गुरु वृहस्पति व असुरों के गुरु शुक्राचार्य्य, सूर्य्य नारायण, चन्द्रमा, अग्नि, पवन इत्यादि देवता तथा देव ऋषि नारदजी, अंगिरा, भृगुजी, अत्रिऋषि शुकदेवजी का और असमदादि सब विद्वानों, सर्वज्ञों, का यही निश्चय है कि ज्ञानमयी इस पावन दृष्टि को धारण करके पूर्वज सब महानुभाव शोक (संशय) को तर कर कृतार्थ हुये हैं ॥४-५॥

महान् विस्तार सहित जो जगत् भासता है वह माया कर रचित हुआ कल्पित है इस दृष्टि से सब संसार को असत्य जानकर शुद्ध अद्वैत पद में स्थित हुये सदा असंग दृष्टि हो ॥६॥

ब्रह्म चैतन्य ही चतुर्दश भवन रूप होताहैअर्थात् भ्रान्तिकरयावत् दृष्टि, श्रुत रूप जगत् है सो ब्रह्म से भिन्न सत्य नहीं और शत्रु, मित्र, बांधव सब शुद्ध ब्रह्म हैं यह ज्ञान दृष्टि सब विद्वानों के अन्तर दृढ़ होती है जैसे तरंग व बुद्बुदे सब जल रूप होते हैं तैसे सब जगत रचना पूर्ण ब्रह्म है ॥७॥

ब्रह्मज्ञान रूप यथार्थ दृष्टि से द्वैत रूप संसार से अतीत,शान्त,निराकार निर्विकार, शुद्ध स्वरूप अद्वैत है इस निश्चय से इच्छा, अनिच्छा आदि सब पदार्थ जीवन्मुक्तों को एक ब्रह्म भासता है इसी प्रकार देह, अन्तःकरण व उनके धर्मों बल्कि सब जगत को बाध करके उनकी सदा एकता रहती है इस से वह निर्वाण स्वरूप है। यह सब वेद, वेदान्त का मुख्य सिद्धांत है॥८॥

इच्छा च तस्यनोदेति निर्वाणस्य प्रबोधिनः।यदि चोदेति तस्येच्छा ब्रह्म शाश्वतमेवसा ।६।
तत्स्थितं व्योमनि व्योम शांते शांतं शिवे शिवम् ।
शून्ये शून्यं सति च सद्ब्रह्मणि जगत्स्थितम् ।१०।
व्यवहार्युपशांतो वा ग्रहस्थो वाथवैकक:।अहं न किंचिच्चिदितिमत्वा जीवो न शोचति।११।
अलेपतोहमजरो नीरागःशांत वासनः।निर्मलोस्मि चिदाकाशमिति मत्वा न शोचति।१२।
अहमंतादि रहितःशुद्ध बुद्धोऽजरामरः। शांतःसमः समाभासइति मत्वा न शोचति।१३।

पद निर्वाणहि इच्छकिम,ब्रह्म एक दृढ़ज्ञान। हो इच्छा प्रारब्ध से,वह भी आतम जान।।
शांत आकाशहि शून्यवपु,सत्य ब्रह्म इकशांत। यही ज्ञानकी अवधिपिख,जगतबाधब्रह्मांत।।
मौन विहारी गृहीयति,सब यह चैतन भाव। ऐसे निश्चय धरे उर,संशय शोक अभाव।।
राग द्वेष नहिं लेप कुछ,अजर वासना रहित।निर्मलचिद्वपु ब्रह्म हम,शोकमोह किम गहित।।
शुद्ध बोधहूँ अन्तबिन,अजर अमर मैं शांत।दृढ़ यह निश्चय एकरस,होइ शोककिस भांति।।

प्रश्न—इच्छा आदि के होते निर्वाणपद में स्थिति कैसे होती है ?
उत्तर—अन्तःकरण के सहज धर्म इच्छा, तोष आदि सब व्यवहार तीव्र
तर प्रारब्धवश होते हैं परन्तु बोधदृष्टि से सब को मिथ्या जान करके, विद्वान्
उनमें लिपायमान नहीं होता इसलिये वह निर्वाण स्वरूप कहाता है ॥६॥
जैसे निर्विकार स्वरूप आकाश में आकाश स्थित व शान्त पद में शान्त
लच्चण और शून्य में शून्यता है तैसे शुद्ध चैतन्य में एक ब्रह्म निर्विकार
स्थित है यह निर्मल दृष्टि जीवन्मुक्त की है ॥१०॥
राज्यपद में स्थित भूपति यथा प्रारब्ध यज्ञ, युद्ध आदि कार्यों को करते
व सन्यासी सबको त्याग उपराम वृत्ति रहते और आचार्य हवन आदि
सब कर्मों को करते, कराते तथा वानप्रस्थी निर्जन स्थान में तपस्या को
धारते हैं परन्तु यह मैं हूँ, यह अन्य है इस भेद दृष्टि से वर्जित केवल
चिन्मात्र मैं हूँ इस निश्चय से जीवन्मुक्त पद में स्थित हुए विद्वान शोक,
मोह से अतीत होते हैं ॥११॥
सांसारिक कार्यों को दैववश करता हुआ भी अन्तर असंग निश्चय पूर्वक
राग, द्वेष आदि से रहित चिदाकाश (पूर्ण चैतन्य) में हूँ इस दृष्टि द्वारा
जीवन्मुक्त पुरुष शोक, संशय को तर जाता है ॥१२॥
ब्रह्म चैतन्य, आदि, मध्य, अन्त इन तीनों अवस्थाओं से अतीत शुद्ध
बोध स्वरूप, अजर, अमर, शान्त सर्वत्र एक रस, प्रकाश स्वरूप मैं हूँ ऐसी
ज्ञानदृष्टि युत जीवन्मुक्त विद्वानों में शोक आदि का अवसर नहीं ॥१३॥

गम्भीरश्च प्रसन्नश्च गिराविव महाह्रदः । परानन्द रसा क्षुब्धो रमते स्वात्मनात्मनि।१४।
ज्ञान संप्राप्ति समये मुक्तोसौ विगताशयः। अहं भ्रांतिर्हि वन्धाय मोक्षो ज्ञानेन तत्क्षयः।१५।
चिन्मात्रत्वं प्रयातस्यतीर्णं मृत्योरचेतसः। यो भवेत्परमानन्दः केनासावुपमीयते।१६।
एतत्स्वरूप मासाद्य प्रकृतिःपरि शाम्यति। न देशो मोक्ष नामास्ति न कालो नेतरास्थितिः।१७
वृहत्क्रकच कापेण शितासि दलनेन च। शराशनि निपातेन कंपते न स्वरूपतः।१८।

ताल मेरु गम्भीर अति,निर्मल ज्ञान प्रवीन। आतम आनन्द स्वाद युत,रहे ब्रह्म में लीन॥
स्वरूप निश्चय शुद्ध वपु, वन्धन अहं उपाधि।जावे हन्ता मुक्त लखु, करो अहं यह वाध॥
चैतन निश्चय कालबिन,गलित वासना रूप। उसकी उपमा योगकिम,परमानन्द स्वरूप॥
हो अपरोक्षहि ब्रह्मजिस,जगत प्रकृती नाश।देश काल कुछ मुक्ति नहिं,मुक्त ब्रह्म अविनाश॥
घर्षण आरे चले असि,पात वज्र पुन.बाण। स्वरूप निश्चय नहीं चल,निर्विकार निर्वाण॥

प्रश्न—पूर्ण दृष्टि वाले जीवन्मुक्तों की दशा कैसी होती है यह स्पष्ट करके कहिये।

उत्तर—सुमेरु पर्वत के समान अचल निश्चय व महान जलाशय के तुल्य गम्भीर बुद्धि और माया रूप मल से रहित तथा नित्य परमानन्द स्वरूप में लीन वृत्ति शुद्ध भावों संयुक्त हुआ विद्वान अन्तर निश्चय से कभी नहीं गिरता किंतु नित्य जीवन्मुक्त पद में स्थित रहता है ॥१४॥

शुद्धआश्य पुरुष ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति काल में ही मुक्त होता है इसलिये उसको जीवन्मुक्त शास्त्र लिखते हैं। परिच्छिन्न अहंकार (देहाभिमान) ही दृढ़ वन्धन है उसका ब्रह्मज्ञान द्वारा अभाव करना जीवन्मुक्ती दशा है ॥१५॥

चैतन्य स्वरूप के निश्चय द्वारा ब्रह्मात्मा को जन्म, मृत्यु आदि विकारों से अतीत जानकर देहाभिमान जिसका नष्ट हुआ है उस जीवन्मुक्त को अज्ञानियों की तुल्यता कैसे दीजा सकती है।१६॥

ब्रह्मात्मा का निश्चय होने पर माया व उसके कार्य जगत का अत्यंताभाव जान पड़ता है इसलिये जीवत् व्यवहारों को करता हुआ विद्वान् जीवन्मुक्त कहाता है ॥१७॥

तीक्ष्ण आरे व पैनी तलवार के प्रहार व अमोघ बाण, कठिन वज्र के पड़ने पर जीवन्मुक्त विद्वान स्वरूप निश्चय से कभी चलायमान नहीं होता यह अवश्य है कि वज्र आदि कर देह व मन आदि व्यथित होते हैं परन्तु, ब्रह्मवेत्ता देह, मन आदि नहीं किन्तु चैतन्य स्वरूप है इसलिये ब्रह्मरूप जीवन्मुक्त का इनसे हानि व लाभ क्या है। सब कथन का भाव यह है कि इनसे विद्वान् की विदेह कैवल्य प्राप्ति में कोई विघ्न नहीं हो सकता ॥१८॥

ध्येयं तं वासना त्यागं कृत्वा तिष्ठंति लीलया। जीवन्मुक्ता महात्मानःसुजना जनकादयः१६
चैत्य वर्जित चिन्मात्रे पदे परम पावने। अक्षुब्ध चित्तो विश्रांतः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२०
यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्। मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता ॥२१
येहि वृत्तिं जहत्येनां ब्रह्माख्यां पावनींपरां। तेतु वृथैव जीवंति पशुभिश्च समानराः ॥२२
निमेषार्धं नतिष्ठंति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना। यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याःसनकाद्याःशुकादयः ॥२३

ध्येय वासना त्यागके, करे सर्व व्यवहार। जीवन्मुक्त महातमा, ब्रह्म निष्ठ निरधार॥
दृश्य रहित चेतन वपू,पदहि परम पहिचान।क्षोभविना विश्रा सहित, जीवन्मुक्त प्रधान॥
जहांकहीं मन जात हो,जगत बाधवपु जान। मनकी धारण दृष्टियह, इकनिष्ठा वरमान॥
तजें अज्ञ जो दृष्टिवर, पावन वृत्ति अनूप। जीते विरथा भागहत, पशू तुल्य अन्धकूप॥
क्षण आधा नहिं त्यागते,ब्रह्मदृष्टि सुख खान। अज सनकादिक देवशुक,अद्वै निष्ठावान॥

प्रश्न—जीवन्मुक्त राजा जनक आदि की अवस्था को यथार्थ रीति से प्रतिपादन कीजिये।

उत्तर—अन्तर ध्येय (विपर्य) से रहित स्वभाविक सब व्यवहारों को करते हुये जनक आदि जीवन्मुक्त निश्चय में अचल रहे हैं अर्थात् विशेष संपत्ति व महान् आपत्ति के संयोग, वियोग होने पर जीवन्मुक्त विद्वान् ज्ञान दृष्टि से कभी नहीं गिरते परन्तु देह आदि का अजर, अमर होना असंभव है किन्तु भगवान् ने आत्मा को ही अच्छेद, अदाह्य लिखा है ॥१६॥

संसार की सत्यता से रहित चैतन्यात्मा को षट् विकारों से वर्जित जिस पुरुष ने निश्चय किया है वह जीवन्मुक्त है, अन्ध, जड़, गूँगा होना चैतन्य के अभ्यास का फल नहीं किन्तु यह दशा रोगी की होती है ॥२०॥

मानसी वृत्ति जिधर २ जावे अर्थात् जिस २ आकार को प्राप्त होवे उन सबको बाध (असत्य जानकर) एक ब्रह्म जानना यह धारणा उत्तम निष्ठा समझी जाती है ॥२१॥

जो २ मनुष्य ज्ञानमयी पावन दृष्टि को प्रमादवश प्राप्त नहीं होवे अर्थात् विचार आदि प्रयत्न द्वारा ब्रह्मात्मा को अद्वैत स्वरूप निश्चय नहीं करते उनका जीना भूमि पर भार रूप (वृथा) है ॥२२॥

ब्रह्मा जी, श्रीविष्णु देव, शंकर भगवान, सनकादिक ऋषि, और नारद, भृगुजी और मुनीश्वर वसिष्टजी, शुकदेव इत्यादि सब जीवन्मुक्त अपने २ उचित कार्यों (व्यवहारों) को नित्य करते हुये स्वरूप दृष्टि से आधा क्षण भी प्रच्युत नहीं होते अर्थात् महान् विक्षेप के हुये भी स्वरूप निश्चय से कदाचित् नहीं गिरते ॥२३॥

निर्वाण पदवी विभास (३९)।

मारैर्न किंचिन्म्रियते जीवैःकिंचिन्न जीवति। शुद्ध संविन्मयस्याय समालोकस्य स्वस्यच ॥१
दृश्याद्योविरतिं यात आत्मारामःशमं गतः। ससन्नेवा सदाभासः परितीर्ण भवार्णव ॥२
दीप निर्वाण निर्वाणमस्तं गत मनो गतिम्। आत्मन्येय शमं यातं संतमेवा मलं विदुः॥३
सर्वार्थरिक्त मनसः सतः सर्वात्मनस्तव। सर्वथा सर्वदा सर्वं सर्वमाचरणं शिवम् ॥४
निश्चिकित्सो निराभासो निरिच्छो निर्मना मुनिः।
भूत्वां निरात्मा निर्वाणस्तिष्ठ संतिष्ठसे यथा ॥५॥

नाशहेतुसे मृत्यु नहिं,जिव कारणनहिंजीव। शुद्ध ज्ञानमय तुल्यनभ,महिमा अद्भुत पीव॥
प्रपंच उपरत शांतमन, आतम रति जगपार। सर्व ब्रह्म अपरोक्ष वपु, झूठ देहपिख सार॥
रूप चित्त का बाधकर,रहि आतम गत शांत। पावे पद निर्वाणको,संत लखो बिन भ्रान्ति।
है उर तुम्हरे शून्य जग, हुआ सर्वथा चैन। सबव्यवहारहि रूपशिव, भासेंगे तव ऐंन॥
नहिं प्रतिकारहि दुःखसुख,मूलवासनानाश। मननभावको बाधकर, निर्वाणहि अविनाश॥

प्रश्न–अब मुझे निर्वाणपद जानने की इच्छा है वह वर्णन कीजिये।

उत्तर–शास्त्र, अस्त्र, सर्प, सिंह आदि कर जो कभी मरता नहीं व अमृत और वर की प्राप्ति करके जो अमर नहीं होता अर्थात् जो नित्य अजर, अमर, निर्विकार, शुद्ध ज्ञान स्वरूप, सर्वत्र पूर्ण निर्वाण पद है वह विद्वानों का वास्तविक रूप है उसमें कोई विकार नहीं होता ॥१॥

एकरस शान्त स्वरूप, आत्मारामी (ब्रह्म निष्ठ) महाशय संसार सागर से पार होता है वह देह, इन्द्रिय, अंतकरण के सर्व व्यवहारों को करता भी सदा अफुर स्वरूप है अर्थात् ब्रह्मात्मा को नित्य अच्युत, अफुर निश्चय करना वेद, वेदान्त में निर्वाण पद वर्णन किया है ॥२॥

जिसकी मानसी वृत्तियां बाध हुई हैं और शुद्धात्मा का निश्चय हुआ है वह सब प्रकार से प्रवृत्त हुआ भी निर्वाण (अफुर) पद में स्थित है ॥३॥

हे तात! जब तेरा मन सब पदार्थों को असत्य जानकर अद्वैत निश्चय करेगा तब सम्पूर्ण क्रियाओं को करता भी तू निर्वाण (कैवल्यभाव) को प्राप्त होवेगा ॥४॥

वास्तव दृष्टि से सुख, दुःख की गति से रहित और दृढ़ इच्छा (ध्येय वासनाओं) से मुक्त विद्वान् अचल है, यानी मनादि सब पदार्थों को बाध करके पूर्वज अष्टावक्र जी व मुनीश्वर वसिष्ठ जी सदा निर्वाण (अफुर) हुये हैं सबका सार यह है कि स्वरूप का अज्ञान ही भारी रोग है जब वह नहीं रहता तब विद्वान् ब्रह्म स्वरूप है उसमें कमी क्या रहती है और देह अन्तः-करण आदि कभी अफुर, अजर, अमर नहीं होते ॥५॥

गतेच्छं मननं शांत मनंतस्थमभावनम्। व्यवहारोस्तुतेमावा स्पंदास्पदैर्यथानिलः ॥६॥
निर्णय एव एवात्रयदृशोपमभावयन्। यथा स्थितं यदाचारं पाषाण इव तिष्ठति ।७।
येषां च विद्यते सर्गःस्वप्न पुँसामि वा सताम्। ससर्गःपुरुषास्तेच मृग तृष्णांबुवीचिवत्।८
अचला इव निर्वाता दीपाइव समत्विपः। साचारा वा निराचारास्तिष्ठति स्वस्थमेवते।९।

ध्येय वासना मुक्त मन,द्वैत भावना हीन। देह व्यवहार होइ वा, ब्रह्मरूप सब चीन ॥
होइ चेष्टा सभी वर,प्रारब्धहि अनुसार। निर्णय मिथ्या वासना, पाषाणहि वृति धार ॥
स्वप्न तुल्य यह जगत सब,मिथ्या भासे जासातरंग दीखैं वारि मृग,असत्य सृष्टीभास ॥
होवे निश्चय अचलगिर,बिना वात ज्योंदीपालहैं क्रिया वा नहीं कुछ,शांत भाव जिमसीप॥

प्रश्न—निर्वाणपद में स्थित पुरुषों की चेष्टा कैसे हो सकती है वह कहिये।

उत्तर—अनात्म रूप मनन कलना से रहित और परिछिन्न अहंकार रूप ध्येय वासनाओं से अतीत हो अनन्त ब्रह्म के निश्चयपूर्वक स्पन्द, निस्पंद गति के समान सभी चेष्टा के होते भी तुम अफुर स्वरूप हो ॥६॥

हेतात! तीव्र प्रारब्ध से तुम्हारी सम्पूर्ण चेष्टायें यथाविधि होवेंगी परंतु हृदय से मिथ्या वासना के अभाव हुये दृढ़ पाषाण के तुल्य तुम निर्विकार (अफुर) स्वरूप में स्थित रहोगे ॥७॥

स्वप्न सृष्टि के समान सब संसार मण्डल मिथ्या है जिन विद्वानों की ऐसी दृष्टि है वह मृग तृष्णा के समान भासते हुये असत्य तरंगों के सदृश सब जगत् को बाध करके प्रलय काल के तुल्य सम्पूर्ण व्यवहारों का अत्यंताभाव देखते हैं ऐसा निश्चय होना निर्वाण पद कहाता है ॥८॥

सुमेरु पर्वत के तुल्य अचल निश्चय अथवा निर्वात स्थान में स्थित दीप शिखाके समान स्थिर भावना सहित स्वयंप्रकाश आत्मा को निश्चय करता हुआ ब्रह्मवेत्ता पुरुष समस्त आचारों (व्यवहारों) को करता भी नित्य निर्वाण पद में स्थित होता है अर्थात् ब्रह्मात्म चैतन्य को षट् विकारों से अतीत, अफुर निश्चय करने पर विद्वान् निर्वाण स्वरूप कहाता है। कई यह शंका करते हैं कि विदेह मुक्ती में निर्वाण पद प्राप्त होता है ऐसा मानने पर भी वेदान्त में देहाभिमान से रहित विद्वान् की ज्ञान समकाल विदेह मुक्ती वर्णन की है अतः अफुर पद में दृढ़ स्थिति होनी सिद्धांत में निर्वाण अवस्था मानी है ॥९॥

भूतादि मयतां त्यक्त्वा बुद्ध्यहंकार चेतसाम्।अत्यंत स्थिति रभ्येति यदि तन्मुक्तोदिता१०
नेह द्रष्टा न भोक्तास्ति नास्तितानंच नास्तिता ।
यथा स्थितमिदं शांतमेकं स्पंदि सदाब्धिवत्।११।
सर्वं दृश्यं जगद्ब्रह्म सदित्य वगते स्फुटम्। जल शोपादि वोदेति चिंवचिंचित्तये शिवम्।१२
शांतता व्यवहारो वा राग द्वेप विवर्जितः। विश्रांतस्य परे तत्त्वे दृश्यते सम दर्शिनः।१३।

अन्तःकरण असत्यता, जान लेत विद्वान। स्वयं प्रकाशहि रूप निज, मुक्त गहे निर्वान॥
दृष्टा भुक्ता नहीं कुछ,सत्य असत्यहि रहित,वारिध व्यापक तुल्यवपु,दैव चेष्टा सहित॥
सर्व दृश्य है ब्रह्मनित,पुनि उपाधि चिद्भासाहोते दोनों बाध जब,शिव निर्वाणहि वास॥
परम पदहि विश्राम मन,राग द्वेप नहिं भाव।समाधि पुन व्यवहारदो,जानेतुल्य अभाव॥

प्रश्न—जीते जीय निर्वाण पद कैसे प्राप्त होता है यह निर्णय कीजिये।

उत्तर—चारों अन्तः करण पांचों भूतों के अपंचीकृत सात्त्विकअंश से उत्पन्न हुये हैं इसलिए अनात्म होने पर असत्य हैं और ब्रह्मात्मा स्वयं प्रकाश है इस निश्चय युक्त विद्वान् देहाभिमान से रहित हुआ विदेह कहाता है॥१०

यथा प्रारब्ध संसार के सब कार्यों को करते हुए वास्तव से न कोई दृष्टा है न भोक्ता है किंतु सब शब्दों से अतीत पूर्ण समुद्र के समान गम्भीर विद्वान् को निर्विकार स्वरूप का निश्चय होना निर्वाणपद है॥११॥

सब जगत् को बाध करके केवल सत्य ब्रह्म है भिन्न द्वैत तीनों कालों में नहीं इस अनुभव से माया, अविद्या आदि उपाधियों को मिथ्या और चिदाभास(जीवत्व)कोइन्द्रजाल के तुल्य असत्य जानना निर्वाणपद में स्थित है॥१२

परमपद में निष्ठायुक्त विद्वान् को समाधि व व्यवहार सम हैं इस निश्चय से राग, द्वेप आदि से अतीत और एकाग्रता व विक्षेप बल्कि सब जगत् को इन्द्रजाल के तुल्य जान लेने पर निर्वाणपद की प्राप्ति होती है, शास्त्रों में लिखा है कि श्री वेदव्यास के महान् प्रतापवान् सुत शुकजी निर्वाणपद को पाकर गृहस्थआश्रम को धारण करते हुए और गोड़ पादाचार्य्य आदि चार पुत्रों को पितरों की कन्या के सकाश से उत्पन्न किया तथा कलियुग में राजा परीक्षित को उपदेश देकर कृतार्थ करते भये। इससे स्पष्ट हुआ कि अकुर ब्रह्म का दृढ़ निश्चय करना निर्वाणपद है॥१३॥

वीतराग भय क्रोधो निर्वाणः शांत मानसः। शिले वाप्यशिलीभूतो मुनिस्तिष्टति नित्यशः॥
स्वप्नादि ज्ञान संशांतौ यद्रूपं शुद्ध मैश्वरम्। न तदास्ति न तन्नास्ति न वागोचरमेवतत् ॥१५
आत्यंतिक भ्रान्ति लये युक्त एवाव गच्छति। स्वरूपं नोपदेशस्य विपयो विदुपो हि तत्१६
शांत निरस्त भय मान विपाद लोभ मोहात्म देह मननेंद्रिय चित्त जाड्यम्।
त्यक्त्वाहमत्त्वयमपास्तसमस्तभेदं निर्वाणमेकमजमासितुमेव युक्तम् ॥१७॥

राग द्वेप भय क्रोध गत, चित्त शांत निर्वान। चिद्वपु ज्ञानी शिलासम, निश्चय निश्चल जान
स्वप्न दृश्य का ज्ञान हत,शुद्ध ब्रह्म सब ईश। सत्य असत से रहितलखि,वाक परे जगदीश॥
भ्रान्ति नाश के रूप को, अंतर मुखता देख। होइ स्वानुभव गम्य यह, शिप्य बोध हित लेख॥
अहं आदि ध्यय वासना,हत जड़ता से रहित। शांत भेद से शून्य लखि,निर्वाणहि पद सहित

प्रश्न—आपने ब्रह्म निष्ठा में ही सब कुछ सिद्ध किया परन्तु इसमें आक्षेप (शंकायें)बहुत हैं इसलिये और स्पष्टता पूर्वक इसी अर्थ का समाधान कीजिये?

उत्तर—सूक्ष्म विचार से देखें तो स्वरूप का अज्ञान ही सब अनर्थों का मूल(कारण)है अर्थात् जन्म, मृत्यु, सर्ग, प्रलय, विक्षेप, आवर्ण तथा माया प्रकृति और फुरणा, भ्रान्ति, बन्ध इत्यादि सब झंझट अज्ञान करके होते हैं अतः भूमिका क्रम से ब्रह्मज्ञान के दृढ़ हुये,पहिले कहे सब अनर्थों और राग, द्वेप, भय इत्यादि मानसी धर्मों से अतीत हुआ मुनीश्वर (विद्वान्) केवल शान्त स्वरूप में दृढ़ पापाण के तुल्य स्थित होता है इस ज्ञान निष्ठा को निर्वाण पदवी कहते हैं अर्थात् वास्तव दृष्टि से जीवन्मुक्ती व विदेह निर्वाण दोनों तुल्य हैं ॥१४॥

स्वप्न से जागे पुरुप के तुल्य भ्रांन्ति को निवृत (बाध) करके शुद्ध चिदानन्द में देश, काल पदार्थों का अत्यंताभाव निश्चय होने पर ब्रह्म चैतन्य में सत्य, असत्य किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं रहती अर्थात् ब्रह्मात्मा मन वाणी का अगोचर अवाच्य, अफुर है ऐसी निष्ठा होनी निर्वाणता है॥१५॥

भ्रान्ति सिद्ध जगत् का अत्यंताभाव ब्रह्मवेत्ता को नित्य प्राप्त है और ब्रह्म चैतन्य मन, वाणी का अविपय है अतः रति (भोग)के तुल्य परमानंद का अनुभव होना स्वसंवेद्य है इस निश्चय को निर्वाणपद कहते हैं ॥१६॥

देह आदि अभिमान को त्याग (बाध) करके भय, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसी वृत्तियों को मिथ्या जानकर शान्तपद में स्थित होना अर्थात् ब्रह्म व जगत् की एकता को निश्चय करना राजयोग रूप समाधि और निर्वाण अवस्था है यह अर्थ वेद, वेदान्त कर प्रमाणित है ॥१७॥

जात्यंधरूपानुभवानुरूपं यदा गमैवु द्धामबोधरूपम्।
अधस्पदी कृत्यतदंतरेस्मिन्बोधेनित्यानुभवो भवाभुः ॥१८॥
जगद्भ्रमं परि ज्ञाययद वासन मास्तितम्। विरसाशेप विपयं तद्धि निर्वाणमुच्यते ॥१६॥
यदा सव प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदिश्रिताः। अथमृर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नते ॥२०॥
यदेकं चाप्यनेकं चसांजनं च निरंजनम्। यत्सर्वं चाप्य सर्वं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः २१

जन्म अन्ध के तुल्य यह,परोक्ष दृष्टी त्याग। अपरोक्षहि नित बोध युत,निर्वाणहि पद जाग
जगको मिथ्या जानकर, विपयों सेति गिलान। ध्येय त्यागहो ज्ञान दृढ़,ब्रह्म निश्चय निर्वान
हृदय वासना मध्य सब,होवें बध जब सोइ। मानुप अमृत लखो तब, ब्रह्म मध्य लय होइ॥
सोई एक अनेक पुनि,मलिन शुद्ध भी जान। पूर्ण अल्प भी ब्रह्म लखि,लय हो तत्त्व प्रमान॥

प्रश्न--निर्वाणपद की प्राप्ति किस प्रयत्न से होती है यह स्पष्ट कहिये।

उत्तर--जन्म अन्ध के नहीं जानने के समान स्वरूप का अज्ञान और बाह्य मुखता को सद्गुरु के सम्यक उपदेश द्वारा परित्याग करके सचक्षु पुरुप के ज्ञान के तुल्य आत्म स्वरूप के बोध को अनुसरण करते हुए जन्म, मृत्यु से रहित अफुर निर्वाणपद की प्राप्ति होती है ॥१८॥

वेदान्त की सद्युक्तियों के द्वारा सब जगत् को असत्य निश्चय करके इष्ट पदार्थों से उदासीन रहना तथा मूल रूप ध्येय वासनाओं को ब्रह्मज्ञान से बाध करना, पूर्व अपर के जानने वाले सर्वज्ञ इसको निर्वाणपद कहते हैं॥१६॥

अन्तःकरण में होने वाली विपर्य्य वासनाओं को त्याग कर अज्ञान का जब बाध (मिथ्यत्व) होवे तब पुरुप देह में स्थित हुआ भी जन्म, मृत्यु रूप बन्धनों से मुक्त होता है सोई निर्वाण पद है ॥२०॥

जो वास्तव से अद्वैत और प्राकृति दशा (भ्रान्तिकाल) में अनेक के समान हो भासता है तथा परमार्थ से माया आदि सब उपाधिओं से परे है और व्यवहार काल में माया सहित भासता है वह सबका अधिष्ठान (वास्तव स्वरूप) शब्द, अर्थों से अतीत अफुर (निर्वाणपद) है विद्वान् ब्रह्मज्ञान द्वारा उसी में स्थित होता है। सब का स्पष्ट भाव यह है कि मूलाज्ञान के अभाव हुये कल्पितरूप सब ठाट विद्वानों की दृष्टि में तीनों कालों में सत्य नहीं किंतु एक अच्युत अफुर पद विद्यमान है यह निष्ठा निर्वाण पदवी है इस सिद्धान्त को वेदांत की उच्च २ संहिताओं में स्पष्ट वर्णन किया है उस अर्थ को निष्पक्ष, यथार्थ वेत्ता स्वयं जानते हैं ॥२१॥

विदेह मुक्ती विभास (४०)

वल्मीके पतितस्तिष्ठेत् तंसर्पो नाभि मन्यते। एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं नाभि मन्यते ॥१
कालभेदं वस्तु भेदं देश भेदं स्वभेदकम्। किंचिद्भेदो न तस्यास्ति किंचिद्वापि न विद्यते॥२
विमुक्तश्च विमुच्यते। गुहा ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति (३) निष्काम आत्मकाम प्राप्त
काम न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव संविलियंते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति ॥४॥

विल पर गेरी कुंचुकी, सांप करे नहि मेर। स्थूल रु सूक्ष्म देहको, ज्ञानी जन नहि हेर॥
नहीं भेद सब किंच सत, जानों एक स्वरूप। जीव ईश यह सत कहां, वेद शास्त्र नहि रूप॥
टूटे आतम ज्ञान से, जड़ चेतन का योग। जीवन्मुक्त विदेह लखि, अमर पदहि संयोग॥
काम रहित निष्काम जब,आत्म रुचि सत्काम। प्राण चलैं नहि लीन वपु,ब्रह्महोइनिज धाम

प्रश्न—विदेह कैवल्य की प्राप्ति व उसका स्वरूप स्पष्टता पूर्वक कहिये।

उत्तर—जैसे साँप अपनी पुरानी त्वचा को विल आदि पर त्याग करके पुनः उसके साथ सम्बन्ध नहीं मानता, तैसे विद्वान् स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों देहों को कल्पित जान संवन्ध (संग) से रहित हुआ पुनः इनमें अभिमान नहीं करता इसी कारण ज्ञानी जीवत् काल में विदेह माना गया है और देहादि को सर्वथा त्यागकर विदेह कैवल्य दशा में निर्गुण ब्रह्म से एक रूप होता है ॥१॥

ब्रह्म चैतन्य में देश, काल वस्तु का परिच्छेद (भेद) तीनों कालों में नहीं अतः ब्रह्मवेत्ता को ज्ञान काल में ही द्वैत कल्पना का अभाव होताहै॥२॥

ब्रह्मज्ञान द्वारा चिज्जड़ ग्रन्थी को तोड़ (बाध) करके अद्वैत दृष्टि होना जीवन्मुक्ती मानी जाती है, भोगकर प्रारब्ध कर्मों के समाप्त हुये विदेह कैवल्य पद में स्थित होती है और जीवन्मुक्ती व विदेह मुक्ती का भेद व्यवहार काल में है, परमार्थ दृष्टि से नहीं ॥३॥

सब ध्येय वासनाओं से मुक्त आतमारामी (आत्मनिष्ठ) ज्ञानी देह आदि को त्याग करके लोकान्तर में नहीं जाता किन्तु प्रारब्ध के समाप्त होने से विद्वान् के प्राणादि का समुदाय अपने २ कारण में विलय होते हैं। जैसे सब नदियाँ समुद्र में पड़कर एकमेक होती हैं तैसे जीवन्मुक्त नाम,रूप,व्यवहार को त्यागकर निर्गुण ब्रह्म से अभेद(एक)होता है और जो अधिकारी (जगत के नेता सर्वज्ञ) हैं उनकी आयुष विशेषतया कल्प की होती है जगत में कार्य करने के लिये उनको पुनः २ देह धारण करने पड़ते हैं। उनकी जन्म, मृत्यु तो स्वप्न, सुषुप्ति के समान है और विद्वान स्वदेह को त्यागकर पुनः द्वितीय देह को धारण नहीं करते किन्तु निर्गुण ब्रह्म में अभेद (एक) होते हैं ॥४॥

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्ध सत्त्वाः।
ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ५ ॥
तस्याभिधानाद्योजना तत्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्ति।
जीवन्मुक्त पदं त्यक्त्वा स्वदेह काल सात्कृते ॥ ६ ॥
प्रारब्ध क्षय वशादेह त्रय भङ्गं प्राप्योपाधि निर्मुक्तःघटाकाश वत्परिपूर्णता विदेह मुक्तिः७
यत्सर्वं शास्त्र सिद्धान्तं यत्सर्वं हृदयानुगम्। यत्सर्वं सर्वगं वस्तु यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥६॥

ब्रह्म ज्ञान वेदान्तसे, निश्चय सम्यक् अर्थ। योगी सन्यासी यती, शुध पद में सामर्थ ॥
उसी ध्यान के योग से, ब्रह्मरूप हो अंत। जीवन्मुक्ता माय तज, मुक्त विदेह अनंत ॥
हत प्रारब्धहि कर्म सब, तीनों देह विनाश। घट फूटे मह शून्य जिम,मुक्ति विदेही वाश ॥
सर्व शास्त्र सिद्धान्त लखि, पावे उरमें सोइ। सबमें पूरण वस्तु जो, तत्त्व वही तुम जोइ ॥

प्रश्न--अनेक मतों वाले मुक्ती हुये पीछे पुनः जन्म मानते हैं तब ज्ञानी का जन्म क्यों नहीं होता यह विस्तार सहित प्रतिपादन कीजिये।

उत्तर--ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर अद्वैतपद में निष्ठायुक्त विद्वानों के संचित कर्म ज्ञान अग्निकर भस्म हो जाते हैं। और आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व बुद्धि के अभाव हुये आगामी (ज्ञान से पीछे) किये कर्मों का स्पर्श नहीं होता, तथा प्रारब्ध कर्म भोग करके निवृत्त होते हैं, कर्म, रूप कारण के अभाव से ज्ञानी का पुनः जन्म नहीं होता किन्तु कर्मों का कारण अज्ञान है वह भी विद्वान् का निवृत्त हुआ है इसलिये ब्रह्मवेत्ता विदेह मुक्ती से पुनः लौटता नहीं किन्तु परमामृत ब्रह्म में लीन (एक) होता है ॥५॥

अभ्यास की दृढ़ता से ब्रह्म को प्राप्त हुये विद्वान् की प्रारब्ध कर्मों के समाप्त होने से माया व तत्कार्य सब का अत्यंताभाव होता है इसलिये जीवन्मुक्त दशा को त्यागकर ज्ञानी अद्वैत निर्गुण ब्रह्म में लीन होता है ॥६॥

प्रारब्ध कर्मों के भोगकर निवृत्त हुये ब्रह्मवेत्ता के तीनों देहों का अभाव होता है और लेशाविद्या भी शान्त होकर कैवल्यभाव की प्राप्ति होती है ॥७॥

जो परमपद सब वेद. वेदान्त आदि शास्त्रों का सिद्धान्त है वह सम्पूर्ण विद्वानों को हृदय गम्य है सोई सब रूप, सर्वत्र व्यापक परमार्थ वस्तु (परमतत्व) है, विद्वान देह आदि को त्याग करके उसी में अभेद होता है अर्थात् जीवन्मुक्त देह आदि को स्वरूप सहित त्यागकर अद्वैत, अच्युत, निर्वाच्य पद में अभेद हुये पीछे संसार मण्डल में जन्म का भागी नहीं होता किन्तु निर्गुण ब्रह्म में लीन (एक) होता है। और अन्य मतों वाले कैवल्य मुक्ती का स्वरूप यथार्थ नहीं जान करके लोकान्तर की प्राप्ति को मुक्ती मानते हैं इसलिये उनको पुनरागमन मानना पड़ता है ॥८॥

इदं चैतन्यमेवेति अहं चैतन्यमित्यपि। इति निश्चय शून्यो यो वैदेहीमुक्त एवसः ॥९॥
निरानन्दो ऽपि सानन्दःसन्नासचवभूवसः।न चेतनो न च जड़ोन चैवासन्न सन्मयः॥१०॥
ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्द मयःसुखी। स्वच्छ रूपो महामौनी वैदेही मुक्त एव सः॥११
व्यपगत कलना कलङ्क शुद्धः स्वयममलात्मनि पावने पदेऽसौ।
सलिल कण इवाम्बुधौ महात्मा विगलित वासनमेकतां जगाम ॥१२॥

चिद मय चेतन जगत यह,भेद रहा फिर काहि। भेदबुद्धिसे रहितजो,मुक्ति विदेही चाहि॥
सुख विहीन आनन्द वपु,सत्य असत नीरूप। चेतन बिन वह जड़नहीं,भाव अभावअरूप॥
होवे ब्रह्म प्रशान्त मन, ब्रह्मानन्द हो चैन। मौनी शुद्ध स्वरूप वह, जान विदेही ऐन॥
कलना रहित कलंकबिन,स्वयं नहीं मल हीन। लय हो पावन पदहिउस,बूंदहि जलमें लीन॥

प्रश्न -मेरे बोध की दृढ़ता के लिये विदेह मुक्ति का स्वरूप पुनःकहिये।

उत्तर--यह चैतन्य है अथवा मैं चैतन्य हूँ यह निश्चय भी जिस पुरुष का विलीन हुआ है वह विद्वान प्रारब्ध कर्मों के समाप्त हुये विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है यानी ब्रह्म के साथ एक होना विदेह मुक्ति है ॥९॥

वास्तव से आनन्द आदि शब्दों से अतीत परमानन्द स्वरूप, शुद्ध, अवाच्य ब्रह्म है वह अज्ञानियों को अलक्ष्य, असत्य हो रहा है सो ब्रह्म, तत्व चैतन्य आदि शब्दों से भी नहीं कहा जाता, किन्तु सत्य, असत्य इत्यादि शब्दों से विलक्षण केवल निर्वाच्य है ॥१०॥

आनन्दघन और माया आदि उपाधियों से अतीत सर्वत्र व्यापक जो अवाच्यपद है उसको यथार्थ जानने वाला ब्रह्मस्वरूप हुआ विद्वान् देह आदि सब जगत् को असत्य निश्चय करके देह होते भी विदेह माना जाता है॥११

जो तत्व फुरणों से रहित और प्रमाद जनित राग, द्वेप आदि भेद कलना से वर्जित तथा माया, अविद्या आदि मल से अतीत शुद्ध चैतन्य स्वरूप है इसको अनुभव करने वाला पुरुष अद्वैत, निर्गुण स्वरूप में अभेद होता है। जैसे जल की बूँद समुद्र में गिरी हुई अभेद (एक) होती है तैसे विद्वान् प्रारब्ध कर्मों के भोगकर समाप्त होने पर केवल ब्रह्म में अभेद हो पुनः संसार में उसका आगमन नहीं होता, यह विदेह मुक्ति का स्वरूप वेद, वेदान्त सम्मत है। और मतान्तरों वालों की मुक्ति विदेह कैवल्य से भिन्न है अर्थात् सालोक, समीप, सारूप सायुज भेद से चार प्रकार की है यानी स्व २ इष्टलोक की प्राप्ति, १ इष्ट के समीप प्राप्ति २ इष्ट के स्वरूप की प्राप्ति ३ और इष्टदेव के समान शक्ति की प्राप्ति ४ यह चार भेद मुक्त के उपासक मानते हैं ॥१२॥

चित्तनाशे विरूपाख्ये न किंचिदिह विद्यते। न गुणा नागुणास्तत्र न श्रीर्नाश्रीर्नचैकता ॥१३
ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवंवापि नचिन्त्यते। चिन्मात्रैवैव यस्तिष्टेद्वै देही मुक्त एव सः ॥१४
प्रारब्धनाशात्प्रतिभास नाश एवंत्रिधा नश्यैति।
चात्म माया विदेहमुक्त एवासौविद्यते निष्कलात्मकः ॥१५॥
चैतन्यमात्र संसिद्धः स्वात्मारामः सुखासनः। तुर्यातुर्यं परानंदो वैदेही मुक्त एवसः॥१६॥

चित्त अरूप हो नाश जब,किंच रहे नहि शेष।गुण निर्गुण से रहित वपु,श्री अश्री विनशेष॥
अहं ब्रह्म चिद रूप में, पद चेतन लखि दूर। निर्मल चेतन वस्तु सो, मुक्ति विदेह हजूर॥
दृश्य सभी प्रारब्ध क्षय, माया सभी विनाश। सर्व कलासे रहित वपु,मुक्त विदेह प्रकाश॥
केवल चिद मय होय वपु, निजानंद में लीन। तुर्यातीत अनन्द लखि,मुक्त विदेह प्रवीन॥

प्रश्न–विदेह मुक्ति में चित्त आदि सब प्रपंच के अभाव हुये उनकी क्या दशा होती है।

उत्तर–चित्त के अरूप नाश (अभाव हुये) तीनों कालों व तीनों गुणों का भी अत्यंताभाव होता है वहाँ किसी शब्द की प्रवृत्ती नहीं होती और माया आदि तलक सब का लोप होता है ॥१३॥

उस दशा में ब्रह्म मैं हूँ अथवा मैं चिदात्मा हूँ यह चिन्तन भी नहीं रहता यानी सब शब्द, अर्थों से अतीत केवल चैतन्यमात्र में स्थित विद्वान् प्रारब्ध कर्मों के क्षय हुये विदेह मुक्ती पाता है॥१४॥

प्रारब्ध कर्मों के भोगकर समाप्त हुये प्रतीत होने वाले जगत का भी अभाव होता है यानी तीनों देहों व सात्विक आदि गुणों का अभाव हुये माया का भी सद्भाव नहीं रहता, वह शब्द अर्थों से अतीत विदेह मुक्ति कहाती है ॥१५॥

केवल चैतन्य स्वरूप में रमन (निष्ठा) सहित विद्वान् तुर्यपद में स्थित होकर अन्तिम आनन्दघन, तुर्यातीत पद में विश्राम पाता है और कई मतों वाले विदेह मुक्ति हुये पीछे ईश्वर में एकता मानते हैं यह अर्थ वेद, वेदान्त से विरुद्ध हुआ त्याज्य है, हेतु यह है कि अनेक श्रुति वाक्य ज्ञानी को ब्रह्म स्वरूप वर्णन करते हैं वहां जीव, ईश्वर आदि सब का अत्यंताभाव है। जब ज्ञान काल में ही ईश्वर आदि का बाध (मिथ्या निश्चय) हुआ तब ब्रह्मस्वरूप विद्वान की ईश्वर में एकता कैसे मानी जावे किन्तु विदेह कैवल्य में शुद्ध निर्गुण ब्रह्म में एकता होती है, इस सब कथन का भाव यह है कि विदेह मुक्ति में नाम, रूप, क्रिया आदि सबका अभाव होता है ॥१६॥

विराड्हिरण्यगर्भश्च ईश्वरश्चेति ते त्रयः। ब्रह्माण्डंचैव पिण्डांडं लोकाभूरादयःक्रमात्॥१७
यस्य प्रपंच भानं न ब्रह्माकारमपिह्न। अतीतातीत भावो यो वैदेही मुक्त एवसः॥१८॥
स्व स्वोपाधिलयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि।तूष्णीमेव स्थितस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं न किंचन१६
चित्त वृत्तिरतीतो यश्चित्त वृत्त्यवभासकः। सर्वं वृत्ति विहीनात्मा वैदेहीमुक्त एवसः॥२०॥

सूत्र विराटहि ईश पुनि, तीनों देह समेत। भूर आदि सब लोक भी, क्रमर होयँ अचेत॥
भासे नहीं प्रपंच जिस, ब्रह्माकार मिटाय। मुक्त अमुक्त स्वरूप लखि, मुक्त विदेह कहाय॥
निज २ तजी उपाधि सब,ब्रह्मातम में लीन। देश काल अरु वस्तु का,होइ सभी तब चीन॥
चित्तवृत्ति को बाधकर,करता वृत्ति प्रकाश। सब भावों से रहित निज,मुक्तविदेह निराश॥

प्रश्न--विदेह मुक्ति में ओ३म् शब्द व उसके अर्थकी स्थिति होतीहै वा नहीं।

उत्तर--ओ३म् की प्रथम मात्रा अकार (विराट), द्वितीय मात्रा उकार (हिरण्य गर्भ), तृतीयमात्रा मकार (ईश्वर), चतुर्थ मात्रा अर्धविन्दु (ब्रह्म) यह चार मात्रा ओ३म् के अन्तर्गत हैं, विदेह मुक्ती में इन सब शब्दों का अभाव होता है वेद, वेदान्त में स्पष्टतया वर्णित है कि विदेह मुक्ति में नाम रूप और व्यवहारों का अत्यंताभाव हो जाता है, एक निर्गुण, अवाच्यपद केवल आनन्द स्वरूप में सबकी एकता होती है ॥१७॥

विदेह कैवल्य में सब प्रपंच बल्कि बन्ध, मोक्ष का भी सद्भाव नहीं होता उसको निर्वाच्य पद कहना चाहिये उस दशा में प्राप्त हुये पुनरावृत्ति नहीं होती किन्तु नित्य परमानन्द स्वरूप में विलीनता होती है अज्ञानी मनुष्य, उस को शून्य रूप (नीरस) जानते, मानते हैं, वेद से विरुद्ध हुआ यह अर्थ समीचीन नहीं ॥१८॥

ईश्वर की माया व जीव की अविद्या दोनों उपाधियों के लय हुये अर्थात् शुद्ध, अवाच्य ब्रह्म में एकता के निश्चय होने पर जीवन्मुक्त पुरुष अन्तिम अशब्दपद में अभेद होता है ॥१६॥

चित्त की सब वृत्तियों से अतीत और सम्पूर्ण वृत्तियों का प्रकाशक तथा वास्तवसे समस्त वृत्तियों से मुक्त अद्वैत ब्रह्म के निश्चयहोने पर विद्वान जीवन्मुक्ती को त्यागकर विदेह कैवल्य में विश्राम पाता है, पहिले सब कथनका स्पष्ट भाव यह है कि प्रारब्ध कर्मों के शेष होने से जीवन्मुक्ती और प्रारब्ध के भोगकर समाप्त होने पर विदेह मुक्ती यह उपदेश तबतक कही जाती हैं परमार्थ दृष्टि से ब्रह्म चैतन्य में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं किंतु निर्वाच्य अद्वैत आनन्दघन स्वमहिमा में स्थित है परन्तु मुमुक्षुओं के बोध प्राप्ति के लिये वचन विलास हैं। वास्तव में यहाँ शब्द, अर्थ सबका अत्यंताभाव है ॥२०॥

सर्वत्रैवाहमात्मास्मिपरमात्मा परात्मकः। नित्यानन्द स्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः २१
जीवात्मा परमात्मेति चिन्ता सर्व विवर्जितः।सर्व संकल्प हीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः॥२२
आत्म ज्ञेयादि हीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मनः।भावाभाव विहीनात्मा वैदेही मुक्त एवसः२३
ॐकार वाच्य हीनात्मा सर्व वाच्यविवर्जितः।अवस्था त्रय हीनात्मा वैदेही मुक्त एवसः॥२४

आत्म लखे सर्वत्र में, परात्म ब्रह्म स्वरूप। नित्यानन्द स्वरूप वपु, मुक्त विदेह अनूप॥
जीव ईशकी बुद्धि तज,सब चिंता से रहित। नेय वासना तजी जिस,मुक्त विदेही कहित॥
ज्ञेय साक्षी ब्रह्मात्मा,नाम आदि नहि काम।नहि कुछ भाव अभाव भी,यह विदेह विश्राम॥
ओंकार नहीं कहि सकें, वाच्य सभी से हीन। सर्व अवस्था रहित जो, मुक्त विदेही चीन॥

प्रश्न–विदेह मुक्तीमें परमात्मा आदि शब्दोंका सद्भाव होता है वा नहीं।

उत्तर–मैं प्रत्यगात्मा सर्वत्र व्यापक हुआ भी परमात्मा,परात्मा इत्यादि अनेक संज्ञा को पाता हूँ इस ज्ञान के परिपक्व होने पर प्रारब्ध कर्मों के भोग कर अभाव हुये विद्वान् विदेह मुक्ती को प्राप्त होता है ॥२१॥

वास्तव दृष्टि से देखा जाय तो वह पद जीवात्म, परमात्म इत्यादि चिंतना से रहित सब विकल्प जालों से अतीत है ऐसा निश्चय होने पर जीवन्मुक्त पुरुष देह को त्याग कर विदेह कैवल्य को प्राप्त होता है ॥२२॥

परमात्म ज्ञेय आदि शब्दों से वर्जित है उस से नाम, रूप आदि का किंचित भी सद्भाव नहीं किंतु अद्वैत, शुद्ध, चैतन्यघन, भाव, अभावकी कल्पना से शून्य है इस निश्चय सहित विद्वान् जीवन्मुक्त दशा को त्यागकर विदेह मुक्ती पाता है ॥२३॥

दृष्टिरेव सृष्टि (एक सत्ता)की रीति से ओ३म आदि संज्ञा से परे और सब शब्दों, अर्थों से मुक्त अवाच्य, अद्वैत पद है उसमें जीवन्मुक्ती, विदेह मुक्ति वास्तव से दोनों नहीं केवल मुमुक्षुओं के बोधार्थ सब संज्ञा शास्त्रोंने वर्णन कीहै अर्थात् जीवन्मुक्ती अवस्था में प्रारब्ध कर्मोंके भोगकर समाप्तहुये विदेह कैवल्य में एकता होती है उस पद में विश्राम हुये पुनरावृत्ति का सर्वथा अभाव होता है इस अर्थ को विचारहीन नहीं जानकर अद्वैत, अवाच्य पदको शून्य (असत्य) मानते हैं, वह वेद, वेदान्त के तत्व को नहीं समझते हुये परमानन्द से वंचित रहते हैं, वह पद सर्व आनन्द की सीमा है कि जिसके लेशमात्र आनन्द कर सब प्रफुल्लित रहते हैं उसके अभाव में दुःख से व्याकुल हुये शोक में डूब जाते हैं। और विद्वान् की आनन्द समुद्र में एकता होती है यही विदेह मुक्ती (कैवल्यपद) है ॥२४॥ ओ३मृतत्सत्।

कल्याण का सुगम उपाय

करो वर्ताव सभी से, निज आत्म अनुकूल ।
वह नहि कीजे किसी प्रति, हो आत्म प्रतिकूल ॥

अर्थ--प्रेम, रक्षा, सत्कार आदि निजात्मा को सुखदाई हैं और दुःख, निन्दा व निज स्त्री, द्रव्य में किसी की कुदृष्टि होना इत्यादि आत्मा को कष्टप्रद हैं इसलिये स्वात्मा से साक्षी लेकर यथोचित सर्वहितैषी वर्ताव करना सब धर्म व भक्ती और ज्ञान का मूल है ।

मनुष्यों की सम्यक् परीक्षा

अनर्थ व्यर्थ स्वारथ वय, द्रव्य परमार्थ हेत ।
अधम कनिष्टहि मध्यम रुचि, श्रेष्ट लगावें चेत ॥

अर्थ--अत्यन्त नीच मनुष्य अपनी आयुष व धन और रुचि आदि को अनर्थ में और कनिष्ठ व्यर्थ कार्यों में तथा मध्यम स्वार्थ में, परन्तु श्रेष्ट (सज्जन) अपना जीवन व द्रव्य इत्यादि को केवल परमार्थ में लगाते हैं ।

मुख्य इष्ट ब्रह्म ज्ञान

शोक का अवसर है कि जिस के बिना एक क्षण भी प्राणी स्थित नहीं हो सकते उस वेदान्तार्थ में अनेक मनुष्य बुद्धिमान कहाते भी अरुचि रखते हैं ।

गीता का छन्द

वेदान्त का उद्देश यह, आनन्द होवें नाश दुख ।
सब वर्ण आश्रम बाल बृद्ध, नर नारि रहती आश सुख ॥१॥
सुत नारि गृह धन सम्पत्ती आनन्द स्फुरती के लिये ।
शुभ धर्म भक्ती साधनहिं, दृढ़ ज्ञान समाधि ये किये ॥२॥
प्रपंच दुःख निधि जानकर, निज ब्रह्म निश्चय कीजिये ।
हों नष्ट संकट दूर सब, आनन्द मय रस पीजिए ॥३॥
चौरासि योनि जीव सब, दुख नष्ट अतिशय सुख चहें ।
है इष्ट ब्रह्मानन्द पद, सब वेद भी मुनि ऋषि कहें ॥४॥
यह अर्थ निश्चय करना सब वेद, शास्त्रोंका सम्यक ज्ञान है शमस्तु ॥

ओ३म् ३६ वीं—निरालम्बोपनिषत् का सार

प्रश्न—कैवल्य पद की प्राप्ति के लिये ब्रह्म से आदि सन्यास तक सब का स्वरूप मैं जानना चाहता हूँ क्रम से कहिये ।

शुद्ध, शान्त, चैतन्य (ब्रह्म) । माया का प्रेरक सर्वज्ञ (ईश्वर) अविद्या से आवृत अल्पज्ञ (जीव) संसार का कारण (प्रकृति) नाम, रूप, क्रियात्मक (जगत्) व्यवहार की उपयोगिता (जाति) धर्म की साधक क्रिया (कर्म) अभिमान व फल की इच्छा रहित क्रिया (अकर्म) अद्वैत ब्रह्म का बोध (ज्ञान) ब्रह्म, आत्मा में परदा (अज्ञान) शान्त वृत्ति में भासित हुआ (सुख) प्रतिकूलता का ज्ञान (दुःख) सात्विक गुण का स्थान (स्वर्ग) तामसी प्रकृति जन्य (नरक) करता, भोक्ता का अभिमान (बन्ध) अज्ञानतत्कार्य का नाश (मोक्ष) सदोपदेशक ज्ञानी (गुरु) साधनों वाला अधिकारी (शिष्य) वेद ब्रह्म का ज्ञाता (विद्वान्) विचार रहित भोग्यासक्त (मूढ़) मन इन्द्रियों को जीतना (तप) चंचलता रूप वृत्तियाँ (विक्षेप) शान्त व नम्रता आदि (ग्राह्य) जगत् के भोग्य सुख (त्याज्य) सच्चिदानन्द ब्रह्म (परमपद) परमगति का साधन (सन्यास)

मूल–मन्त्र–महावाक्यार्थानुभव ज्ञानाद्ब्रह्मैवाहमस्मीति निरालम्बंसमाश्रित्य सालम्बं विजहातियः स सन्यासी च योगी च कैवल्य पदमश्नुते (मैं ही ब्रह्म हूँ महावाक्यों के ज्ञान द्वारा निराधार ब्रह्म को आश्रय करके जो दृश्य का बाध (परित्याग) करता है वही सच्चा सन्यासी, जीवन्मुक्त, जगत्पूज्य राज योगी, परम हंस, अवधूत, ब्रह्मदेव होता है)

(श्रुति) ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवति (ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही होता है (स्मृति) ज्ञानी त्वात्मैवमेमतम्) ब्रह्मज्ञानी सर्व आत्मा (स्वरूप) है यह सर्वोच्च पद तो योगवसिष्ठ के सादर निरंतर अभ्यास करने से शीघ्र प्राप्त हो सकता है । अनु० स्वा० ब्रह्मानन्द जी सहकारी स्वामी आत्मानन्द जी ।